द्वितीय अध्याय

हिन्दी भाषा-शिक्षण : सैद्धान्तिक स्वरूप

शैशव अवस्था से ही मनुष्य की शिक्षा प्रारम्भ हो जाती है। माता-पिता बच्चे के सामने ही कुछ ध्वनियाँ रखते हैं और उसे अनुकरण के लिए प्रेरित करते हैं। जब बच्चा समाज के संपर्क में आता है तो वह ध्वनियों को बार-बार सुनता है, उनका अनुकरण करता है और इस प्रकार बच्चे के व्यवहार में परिवर्तन आता जाता है। अतः माता-पिता आदि के बच्चे को सिखाना 'शिक्षण' है, ध्वनियों आदि को बार-बार सुनकर उनका अभ्यास करना 'प्रशिक्षण' है, बच्चे के व्यवहार में होने वाला परिवर्तन 'अधिगम' है तथा इन सबके मूल में जो वृत्ति काम करती है , वह 'जिज्ञासा' है। इस अनौपचारिक शिक्षा के बाद विद्यार्थी औपचारिक शिक्षा के माध्यम से अध्यापक के संपर्क में आता है। प्रमुख भाषा विद्वान डॉ. मुकेश अग्रवाल ने शिक्षा के बारे में यह कहा है कि -

"शिक्षा का अर्थ है किसी प्रकार का ज्ञान या विद्या प्राप्त करने के लिए सीखने-सिखाने का क्रम।"1 प्रस्तुत अध्याय में हिन्दी भाषा-शिक्षण के सिद्धांतों को आधार बनाकर भाषा-शिक्षण के स्वरूप, अन्य भाषा के रूप में हिन्दी-शिक्षण के प्रयोजन, अन्य भाषा-शिक्षण की पद्धतियाँ, द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी शिक्षण, शिक्षण सामग्रियों का मूल्यांकन आदि विषयों पर विस्तृत चर्चा करते हुए भाषाई कौशलों के बारे में बताया गया है तथा शिक्षा की राष्ट्रीय नीति को दर्शाया गया है।

2.1 भाषा शिक्षण का स्वरूप : सामान्यतः शिक्षण का अर्थ है - शिक्षा देना, ज्ञान प्रदान करना, सिखाना, कौशल विकसित करना। किसी भी प्रकार का सैद्धान्तिक अथवा व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करना शिक्षण कहलाता है। परंतु भाषा-शिक्षण के संदर्भ में मात्र सैद्धान्तिक ज्ञान प्रदान करना पर्याप्त नहीं माना जा सकता। अन्य ज्ञानपरक विषयों से भिन्न इसके माध्यम से बच्चे के भाषाई व्यवहार में परिवर्तन लाने का प्रयास किया जाता है। समाज में व्यवहार के समय भाषा की महती भूमिका होती है। यदि व्यक्ति के पास

ज्ञान है परंतु उसे प्रस्तुत करने के लिए उपयुक्त एवं प्रभावी शब्दावली नहीं है तो स्वयं उस व्यक्ति अथवा समाज को उसका कोई लाभ नहीं होगा। इसलिए अध्यापक को पूर्ण सजग रहते हुए निश्चित लक्ष्य के साथ विद्यार्थी के भाषाई कौशलों को विकसित करने का प्रयास करना पड़ता है।

हम यह कह सकते हैं कि समाज में रहते हुए बच्चा अपने माता-पिता, भाई-बहन तथा अन्य लोगों से कुछ-न-कुछ सीखता रहता है। अतः वह भी शिक्षण है। परंतु जब हम भाषाई शिक्षण की बात करते हैं तो यह उपर्युक्त अनौपचारिक शिक्षण से भिन्न होता है। यह एक औपचारिक, सुनियोजित, सोद्देश्य प्रक्रिया है जिसमें बच्चे की भाषाई कौशलों की क्षमता को विकसित एवं परिमार्जित किया जाता है। भाषाई कौशल चार माने जाते हैं - सुनना (श्रवण), बोलना (भाषण), पढ़ना (वाचन), लिखना (लेखन)। इनमें प्रथम दो मुख्य कौशल हैं तथा अंतिम दो गौण कौशल। बच्चा अनौपचारिक शिक्षण के माध्यम से प्रथम दो का ज्ञान प्राप्त कर सकता है परंतु इनमें रह जानेवाली त्रुटियों को परिमार्जन तथा वाचन और लेखन का ज्ञान औपचारिक शिक्षण के माध्यम से संभव होता है और इसमें अध्यापक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

प्राचीनकाल में शिक्षण के केंद्र में अध्यापक था। वह जबर्दस्ती बच्चे के मस्तिष्क में सारी जानकारियाँ ठूँसने का प्रयास करता था, परंतु नवीन शोधों और जानकारियों ने शिक्षण के लक्ष्य अध्येता को महत्वपूर्ण बना दिया है। आज अध्यापक के लिए मनोविज्ञान का आश्रय लेना आवश्यक हो गया है। बच्चे की वय, रुचि, परिवेश आदि के अनुकूल ही आज उसे सामग्री प्रदान की जाती है। इसके साथ ही भाषाविज्ञान ने भी पर्याप्त क्रांतिकारी जानकारियाँ दी हैं। आज यह आवश्यक नहीं है कि बच्चे को 'क, ख, ग ...' के क्रम से वर्ण-रचना सिखाई जाए। भाषाविज्ञान और मनोविज्ञान ने इस क्रम को परिवर्तित रूप में सिखाने पर बल दिया है। आज भाषा-शिक्षण का प्रारम्भ वर्ण के स्थान पर वाक्य से

करने को वरीयता दी जाती है। इस प्रकार अध्यापक के लिए आवश्यक हो गया है कि उसे मनोविज्ञान और भाषाविज्ञान की सामान्य जानकारी अवश्य हो।

शिक्षण के लिए अध्यापक जिस सामग्री का उपयोग करता है, उसके संबंध में माना जाता है कि वह ज्ञानवर्धक के साथ-साथ बच्चे की रुचि के अनुकूल एवं रोचक भी हो। इसलिए बच्चे को चित्र दिखाकर वर्णों, शब्दों आदि का ज्ञान कराया जाता है। इतना ही नहीं, विद्यार्थी की आवश्यकतानुसार अध्यापक शिक्षण-सामग्री को कम, अधिक अथवा परिवर्तित भी कर सकता है। अध्यापक को आवश्यकता अनुभव होने पर सामग्री की पुनर्व्यवस्था एवं पुनर्रचना भी करनी पड़ती है। एक बार सामग्री का निर्माण कर उससे वर्षों कार्य नहीं चलाया जा सकता। समय, स्थिति एवं परिवेश की आवश्यकता के अनुसार अध्यापक को उसमें परिवर्तन करना पड़ता है और समय-समय पर नवीन सामग्री का निर्माण भी करना पड़ता है।

शिक्षण एक योजनाबद्ध कार्य है। अध्यापक कक्षा में जाकर बच्चे के सम्मुख भाषण देना प्रारम्भ नहीं कर सकता। उसे अपने पाठ का परिवेश के साथ सहयोजन (समवाय) करना पड़ता है। इसके लिए उसे पाठ योजना भी बनाना पड़ती है। कितने समय में विद्यार्थी को औपचारिक रूप से कितना पढ़ाया जा सकता है, पाठ के आधार पर कौन-कौन से संभावित प्रश्न हो सकते हैं, कहाँ व्याख्या की आवश्यकता होगी, आदि के आधार पर पूर्ण योजना बनाकर ही आवश्यक कक्षा में जाता है। कक्षा में भी अध्येता को संदर्भानुसार ही शिक्षा दी जाती है। जिस प्रकार का संदर्भ हो वर्ण, शब्द, रूप, वाक्य-रचना आदि भी उसी प्रकार की होती है। कहानियों की भाषा सरल एवं प्रवाहपूर्ण होगी तो जानकारी देनेवाले लेखों की भाषा में अपेक्षाकृत गंभीर शब्दों आदि का प्रयोग होगा। भाषा और संस्कृति का अटूट संबंध है, अतः बच्चे को समाज और संस्कृति की जानकारी देना और उनके उपयुक्त भाषा का प्रयोग करना भी शिक्षण के समय ध्यान रखने योग्य विषय हैं। विभिन्न

प्रयुक्तियों की भाषा भी भिन्न होती है उदाहरणार्थ, साहित्य और विधि की भाषा-शैली में अंतर होता है, अतः उच्च स्तर पर भाषा अध्यापक इस प्रकार शिक्षण करता है कि विद्यार्थी अन्य विषयों में प्रयुक्त होनेवाली भाषा साहित्य से उसका अंतर भी समझ सके।

अन्य भाषा शिक्षण मातृभाषा शिक्षण के कुछ अर्थों में भिन्न होता है। मातृभाषा शिक्षण में विद्यार्थी के चारों कौशलों के विकास पर बल दिया जाता है, परंतु अन्य भाषा शिक्षण में अध्येता अपनी आवश्यकतानुसार दो, तीन अथवा चार कौशलों में रुचि रखता है अतः शिक्षण-सामग्री और उसका स्तर भी उसी के अनुरूप परिवर्तित हो जाता है। अन्य भाषा शिक्षण में अध्येता की उम्र और भाषाई अनुभव भी मातृभाषा भाषी से भिन्न होता है। यह भी ध्यातव्य है कि मातृभाषाभाषी अनौपचारिक वातावरण में भाषा सीखकर आता है, विशेषतः दोनों प्रमुख कौशलों पर विद्यार्थी का अधिकार होता है। अध्यापक का मुख्य दायित्व उनमें प्राप्त भूलों की ओर विद्यार्थी का ध्यान केन्द्रित कर भाषा का परिमार्जन करना होता है। परंतु अन्य भाषा शिक्षण में विद्यार्थी नए सिरे से भाषा सीखना प्रारम्भ करता है। यह भी आवश्यक नहीं कि उसका सामाजिक परिवेश लक्ष्य भाषा का ही हो। अध्यापक जब शिक्षण प्रारम्भ करता है तो ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य-रचना, अर्थ, संस्कृति प्रत्येक स्तर पर उसकी मातृभाषा व्याघात उत्पन्न करती है। उदाहरणार्थ, हिन्दी के दो स्वनिमों - 'ट्' तथा 'त्' के लिए अंग्रेज़ी में एक ही स्वनिम 'T' है। इसी प्रकार हिन्दी में चाय, दूध, सिगरेट को पिया जाता है तो असमिया भाषी इन्हें खाते हैं। हिन्दी के 'तू', 'तुम', 'आप' सर्वनाम रूपों के लिए अंग्रेज़ी में 'you' ही है। इसी प्रकार, अंग्रेज़ी में 'तीन' लिंग हैं तो हिन्दी में 'दो'। अध्यापक अपनी सामग्री की रचना और प्रस्तुतीकरण इस प्रकार करता है कि विद्यार्थी लक्ष्य भाषा का प्रयोग मातृभाषाभाषी के लगभग समान कर सके। इसके साथ ही एसे क्षण भी आ सकते हैं जब विद्यार्थी की रुचि अध्ययन में कम हो जाये। ऐसी स्थिति में अध्यापक विद्यार्थी को उत्प्रेरित करने का कार्य भी करता है।

2.2 अन्य भाषा के रूप में हिन्दी भाषा शिक्षण का प्रयोजन

मानव के प्रत्येक कार्य के पीछे कोई-न-कोई प्रयोजन अवश्य होता है। भाषा-शिक्षण भी सप्रयोजन क्रिया है। भाषा किसी-न-किसी विशेष उद्देश्य या प्रयोजन के संदर्भ में सीखी और सिखाई जाती है। यह माना जाने लगा है कि जब तक भाषा-शिक्षण के उद्देश्य एवं प्रयोजन निर्धारित नहीं कर लिए जाते, उसकी सार्थकता और संप्राप्ति का मूल्यांकन भी संभव नहीं हो पाएगा। भाषा-शिक्षण की अपनी सिद्धि निर्धारित प्रयोजन की सिद्धि है जो प्रयोक्ता (शिक्षार्थी) सापेक्ष होती है। भाषा-प्रयोक्ता की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन के रूप में भाष-शिक्षण की सिद्धि को एक ऐसी अविच्छिन्न संतत रेखा के रूप में देखा जा सकता है जिसके एक छोर पर विदेशी प्रयोक्तावर्ग है और दूसरे छोर पर मातृभाषी प्रयोक्तावर्ग। हिन्दी भाषा-शिक्षण के क्षेत्र के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि उसके एक छोर पर ऐसे व्यक्तियों का समुदाय है जो न हिन्दी भाषा जानता है और न जिसे सामाजिक और वैयक्तिक आवश्यकताओं के लिए हिन्दी भाषा जानना ही ज़रूरी है और उसके दूसरे छोर पर ऐसे व्यक्तियों का समुदाय है जो न केवल हिन्दी भाषा का कामचलाऊ ज्ञान रखता है वरन उसके मानक रूप के प्रयोग की दक्षता भी रखता है।

कोई भी राष्ट्र बिना किसी राष्ट्रभाषा के अपनी पहचान और प्रतिष्ठा नहीं बना सकता। सन् 1917 ई॰ में राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने भारत की राष्ट्रभाषा के संदर्भ में यह कहा था कि - किसी भी भाषा में राष्ट्रभाषा बनने के लिए निम्नलिखित गुण ज़रूर होने चाहिए -

क. उसे सरकारी कर्मचारी आसानी से सीख सके।

ख. वह समस्त भारत में धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक संपर्क के माध्यम के रूप में प्रयोग के लिए सक्षम हो।

ग. वह अधिकांश भारतीयों द्वारा बोली जाती हो।

घ. सारे देश को उसे सीखने में आसानी हो।

ङ.ऐसी भाषा को चुनते समय अस्थायी या क्षणिक परिस्थितियों को महत्व न दिया जाए।

भारतीय भाषाओं में केवल हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जिसमें उपर्युक्त सभी गुण हैं।

ध्यातव्य है कि राष्ट्रभाषा केवल राष्ट्र की भाषा ही हो सकती है, कोई विदेशी भाषा नहीं। विदेशी भाषा किसी राष्ट्र की राजभाषा, संपर्क भाषा या सहभाषा भले ही हो जाये, लेकिन वह राष्ट्रभाषा तो कतई नहीं हो सकती। यह अलग बात है कि किसी राष्ट्र की राष्ट्रभाषा वस्तुतः जनवाणी होती है और उसके सुख-दुख, संस्कृति, परंपरा, सभ्यता और अस्मिता से जुड़ी होती है, वह समस्त राष्ट्र के विचार-विनिमय और संपर्क का माध्यम होती है। वह राजकीय संपत्ति नहीं है, अपितु सामाजिक संपत्ति होती है। कोई भाषा राष्ट्रभाषा की गरिमा राज्याश्रय के कारण नहीं, अपितु सामाजिक स्वीकृति और प्रतिष्ठा के कारण प्राप्त करती है। इस दृष्टि से हिन्दी को राष्ट्रभाषा यहाँ की जनता, उसकी परंपरा, सभ्यता, संस्कृति, व्यवहार और स्वीकृति ने बनाया है। जनसमर्थन और उसकी शक्ति ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा की गरिमा दी है। हिन्दी मात्र भाषा नहीं है, बल्कि राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के स्वराज्य अथवा रामराज्य का सपना है और राष्ट्र की एकता की कुंजी है। हमारी सांस्कृतिक चेतना और ऐतिहासिक परम्पराओं की रक्षा भी अब हिन्दी से ही संभव है, कारण हिन्दी एक ओर संस्कृत की बेटी है तो दूसरी ओर कन्याकुमारी से लेकर कश्मीर तक राष्ट्र को एक जुट में रखने वाला मंगलसूत्र है।

भाषा का व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान है। एक ओर वह व्यक्तित्व के विकास और अभिव्यक्ति का माध्यम है तो दूसरी ओर उसके सामाजीकरण का साधन, एक ओर वह समाज में सम्प्रेषण व्यवस्था का उपकरण बनती है तो दूसरी ओर व्यक्तियों को सामाजिक वर्गों में बाँधने और उनसे बिलगाव करने का हेतु, एक ओर

वह राष्ट्रीय भावना का संवाहक बनती है तो दूसरी ओर एक ही राष्ट्र के विभिन्न भाषाई समुदाओं में विषम भाव उत्पन्न करने वाली एक चेतना। अतः भाषा-शिक्षण संबंधी निर्णय का राष्ट्र, समाज और व्यक्ति के जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। भाषा और भाषा-शिक्षण नीति के इस प्रभाव के प्रति जनसामान्य सामान्यतः सजग और सचेत नहीं होता पर वस्तुतः कोई देश विघटित होगा या संगठित, यह कृषक प्रधान सामंती प्रथा निर्वाह करता रहेगा अथवा यंत्र प्रधान मशीनी युग का निर्माण, वह अलग रहकर राष्ट्रों से कटा रहेगा अथवा दूसरे राष्ट्रों को प्रभावित करने और उनसे प्रभावित होने की ओर बढ़ेगा - इन सबका सीधा संबंध भाषा-शिक्षण नीति के साथ देखा जा सकता है।

यह सामान्य अनुभव की बात है कि जो वस्तु नित प्रतिदिन व्यवहार में आने लगती है, उसे हम प्रायः सहज और सामान्य रूप में ग्रहण करने के अभ्यस्त हो जाते हैं। ऐसी वस्तुएँ आमतौर पर हमारा ध्यान आकर्षित करने की क्षमता खोने लगती हैं। स्वभाव और आदत के रूप में हम भाषा का नित प्रतिदिन व्यवहार करते हैं। व्यवहार के विविध क्षेत्रों में हम इसका उपयोग करते हैं। विभिन्न लक्ष्यों की पूर्ति के लिए हम इसको भिन्न-भिन्न रूप में अपनाते हैं। हम यह भले ही अनुभव न करें पर भाषा हमारे सामाजिक जीवन के हर सांस में किसी-न-किसी रूप में बंधी छिपी रहती है। अपने सामाजिक जीवन में प्राणरूप सिद्ध इस उपकरण को स्वभावतः हम स्वीकारते और अपनाते चले जाते हैं, बिना यह सोचे कि भाषा कि अपनी प्रकृति क्या है? भाषा, स्वयं में है क्या? यही कारण है कि शिक्षा के व्यापक संदर्भ में भाषा का क्या स्थान होना चाहिए, शिक्षार्थी को समाज और राष्ट्र की अपनी अपेक्षाओं के परिप्रेक्ष्य में भाषा-ज्ञान पर कितना बल देना चाहिए, अन्य विषयों और अनुभव के साथ इसे किस रूप में सहयोजित करना चाहिए आदि कई आधारभूत प्रश्नों की हम उपेक्षा कर जाते हैं।

शिक्षा के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि हम बच्चे को भले ही भाषा की जानकारी एक अलग विषय क्षेत्र (व्याकरण या भाषाविज्ञान) के रूप में न दें, वह हर विषय और ज्ञानवार्ता के साथ इसको अज्ञात भाव से सीखता चलता है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि सामान्य शिक्षा में भाषा का अपना 'विषय' नहीं होता, पर वह हर 'विषय' के माध्यम रूप में स्थित मिलता है। चाहे हम इतिहास-भूगोल विषय को पढ़ाएँ अथवा भौतिक-रसायनशास्त्र विषय को, भाषा से असम्बद्ध रहकर हम न तो इसकी शिक्षा दे सकते हैं और न शिक्षार्थी इसे अपने भीतर आत्मसात ही कर सकता है। कारण स्पष्ट है - भाषा अगर सामाजिक वस्तु के रूप में सम्प्रेषण व्यवस्था का माध्यम है तो वह मानसिक जीवन कि संकल्पनात्मक शक्ति भी है। अगर शिक्षक, विषयवस्तु को सही भाषाप्रयोग में बांधकर शिक्षार्थी तक पहुँचा नहीं सकता, तो वह अपने कार्य में लक्ष्यच्युत ही माना जाएगा और इसी प्रकार अगर शिक्षार्थी, संप्रेष्य कथ्य को सही भाषा के सहारे अपनी संकल्पनात्मक भूमि पर उतार कर उसे आत्मसात नहीं कर लेता, तो उसे शिक्षा का योग्य ग्राहक नहीं कहा जा सकता। इस पूरी प्रक्रिया के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि भाषा, संप्रेष्य कथ्य के रूप में भले ही 'विषयवस्तु' के रूप में सिद्ध न मानी जाए पर पूरी सम्प्रेषण प्रक्रिया अथवा शिक्षाव्यापार का वह आधारभूत अंग है। यही कारण है कि आज शिक्षाविद और दार्शनिक यह स्वीकार करने लगे हैं कि हर शैक्षिक उद्देश्य की असफल परिणति अथवा गलत प्रयोग होता है।

मातृभाषा का ज्ञान विद्यार्थी को सहज रूप में हो जाता है परंतु अन्य भाषा निश्चित प्रयोजन के साथ सीखी जाती है। अन्य भाषा-शिक्षण के प्रयोजनों की चर्चा दो प्रकार से की जाती है। एक शिक्षण संस्थान किस स्तर पर विद्यार्थी में किस कुशलता को विकसित करना चाहता है। इस दृष्टि से अलग-अलग शिक्षण संस्थान अलग-अलग चिंतन मनन कर लगभग समान उद्देश्यों तक पहुँचे हैं। इसके अनुसार विद्यार्थी में श्रवण, भाषण, वाचन और लेखन कौशल की योग्यता का विकास करना ही अन्य भाषा-शिक्षण का

उद्देश्य है। इसमें निर्धारित करने योग्य महत्वपूर्ण तथ्य यही रहता है कि प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक आदि स्तरों पर किस कौशल को कितना विकसित किया जाए। इसी आधार पर पाठ्यक्रम का निर्धारण किया जाता है। परंतु अन्य भाषा-शिक्षण के उद्देश्यों को विद्यार्थी की दृष्टि से भी देखा जाना चाहिए। अन्य भाषा का शिक्षण दो प्रकार से होता है। एक जिसमें विद्यार्थी को केंद्र में न रखकर उसकी रुचि आदि की विशेष परवाह न कर उसे अन्य भाषा सिखाई जाती है, जैसे भारत में त्रिभाषा फॉरमूले के अंतर्गत विद्यार्थी को अँग्रेजी और मातृभाषा के अतिरिक्त एक अन्य भाषा भी सीखनी पड़ती है। इस स्थिति में शिक्षण-संस्थान अथवा सरकार ही अन्य भाषा-शिक्षण के उद्देश्यों का निर्धारण करती है, यथा - राष्ट्रीय एकता बढ़ाना, सांस्कृतिक आदान-प्रदान, भावात्मक एकता बढ़ाना आदि। परंतु, अनेक बार विद्यार्थी स्वेच्छया अन्य भाषा सीखने की ओर प्रेरित होते हैं। ऐसी स्थिति में उद्देश्यों के केंद्र में भी वही होते हैं, वे निश्चित उद्देश्यों के साथ अन्य भाषा अधिगम की ओर प्रेरित होते हैं। डॉ॰ मुकेश अग्रवाल के अनुसार अन्य भाषा-शिक्षण के प्रमुख प्रयोजन निम्नलिखित हैं -

“1. ज्ञानार्जन : अन्य भाषा-शिक्षण का प्रमुख प्रयोजन है अन्य भाषा में उपलब्ध ज्ञान का अर्जन करना। अन्य देशों के प्राचीन ज्ञान के संबंध में जिज्ञासा रखनेवाले विद्यार्थी इस प्रयोजन के साथ अन्य भाषा अधिगम की ओर प्रेरित होते हैं। कभी-कभी शोधपरक दृष्टि भी केंद्र में रहती हैं। उदाहरणार्थ रूस तथा जापान आदि देशों के विद्यार्थियों ने ज्ञानार्जन की दृष्टि से ही हिन्दी भी सीखी। जो देश आज ज्ञान, विज्ञान, तकनीक, कला आदि के क्षेत्र में विकसित देशों की कोटि में आते हैं, उसकी भाषा सीखने की ओर भी विद्यार्थी प्रेरित होते हैं क्योंकि यह ज्ञान सभी भाषाओं में अनूदित नहीं हो पाता, दूसरे स्वयं उस भाषा का ज्ञान होने पर विद्यार्थी प्रामाणिक रूप से सारी जानकारियाँ एकत्र कर सकता है।

2. संस्कृति के संबंध में जानना : वैज्ञानिक साधनों के विकास ने आज विश्व को बहुत छोटा कर दिया है। अतः आज व्यक्ति सिर्फ़ अपने और अपने परिवेश के संबंध में जानकर ही संतुष्ट नहीं हो सकता। वह अन्य देशों एवं उनकी संस्कृति को जानना चाहता है। भारत, मिस्र, यूनान आदि विकसित सभ्यताओं और समृद्ध सांस्कृतिक धरोहरवाले देशों की संस्कृति को निकट से जानने की इच्छा तो और भी स्वाभाविक है। संस्कृति को जानने का सबसे सहज सुलभ माध्यम भाषा है, अतः विद्यार्थी अन्य भाषा अधिगम की ओर प्रेरित होते हैं। भाषा के माध्यम से विद्यार्थी उस देश के रहन-सहन, रीति-रिवाज, खान-पान, नृत्य-संगीत, पर्व-त्यौहार आदि के संबंध में निश्चित जानकारी प्राप्त कर सकता है।

3. व्यवसाय का विकास : वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति के कारण आज मानव अपने शहर और देश को उसकी परिधि नहीं मानता। वह जानता है कि विश्व में उसके लिए अपार क्षेत्र खुला हुआ है। इसी कारण वह अपने देश को छोड़कर दूसरे देशों में नौकरी, शिक्षण, व्यवसाय और उद्योग के क्षेत्र में जा रहा है। भारत के हजारों-लाखों व्यक्ति इसी प्रयोजन से विदेशों में अनिवासी भारतीय के रूप में रह रहे हैं। इसी प्रकार भारत में भी अनेक विदेशी कंपनियाँ और उनके साथ विदेशी नागरिक भी आ रहे हैं। परंतु नौकरी से लेकर उद्योग तक सभी क्षेत्रों में वास्तविक प्रगति का मार्ग तभी खुल सकता है जब व्यक्ति उस क्षेत्र की भाषा भी जानता हो। इससे वह उस विषय से संबन्धित जानकारियाँ प्रामाणिक रूप से एकत्र कर सकता है और वहाँ के नागरिकों तथा अधिकारियों को प्रभावित कर सकता है। भारत में अंग्रेज़ी की लोकप्रियता का एक कारण यह भी है। अतः व्यवसाय उद्योग तथा धनार्जन में रुचि रखनेवाले व्यक्तियों के लिए अन्य भाषा अधिगम एक आवश्यकता बन जाती है।

4. आनन्द की प्राप्ति : अन्य भाषा-शिक्षण का एक प्रयोजन है - आनंद की प्राप्ति। विद्यार्थी मात्र मातृभाषा के अध्ययन से ही संतुष्ट नहीं होता। वह अन्य भाषाओं के साहित्य का रसास्वादन भी करना चाहता है। 'रस' का आस्वाद एसी स्थिति है जो चित्त को निर्मल करती है। व्यक्ति जितना अधिक इसका आस्वादन करता है, उतनी ही उसकी इच्छा और बढ़ती है। वह सत्, चित्, आनंद रूप रस में डूब जाना चाहता है। अन्य भाषा का साहित्य यदि व्यक्ति को अनूदित रूप में प्राप्त भी हो जाए तब भी व्यक्ति संतुष्ट नहीं हो सकता क्योंकि साहित्य में प्रयुक्त शब्दों को प्रतिशब्द मूल की छाया मात्र ही होते हैं। इसीलिए देवकीनंदन खत्री के उपन्यासों - चंद्रकांता, चंद्रकांता संतति आदि को पढ़ने के लिए अनेक लोगों ने हिन्दी सीखी थी।

5. विचारों का आदान-प्रदान : विचारों का आदान-प्रदान करने की इच्छा भी अन्य भाषा अधिगम का प्रमुख प्रयोजन है। मातृभाषा के माध्यम से व्यक्ति अपने भाषाई परिवेश के व्यक्तियों के साथ भी विचार-विनिमय कर सकता है। परंतु आज व्यक्ति के परिचय का क्षेत्र विस्तरित हो गया है। अपने भाषाई क्षेत्र के बाहर भी ऐसे मित्र, परिचित रहते हैं, जिनसे मात्र उन्हीं की भाषा में विचारों का आदान-प्रदान संभव है। इसी प्रकार व्यक्ति अपने मनोभाव दूसरे भाषाई समाज तक भी पहुँचाना चाहता है और उनके विचारों को जानने की इच्छा भी उसके मन में रहती है।यह अन्य भाषा अधिगम के माध्यम से ही संभव हो सकता है।

6. भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन की इच्छा : मानव की इच्छाओं का कोई अंत नहीं है। वह सदैव अन्य बातों को जानने और उनके विवेचन-विश्लेषण की इच्छा रखता है। तुलना करना मानव की जन्मजात प्रवृत्ति है। वह सदैव प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से अपनी वस्तुओं की दूसरों से तुलना करता रहता है। विद्यार्थी भी इसका अपवाद नहीं है। मातृभाषा का अध्ययन करते-करते ही उसके मन में दूसरी भाषाओं को जानने और उनका तुलनात्मक

अध्ययन करने की इच्छा बलवती हो जाती है और अवसर मिलने पर वह अन्य भाषा अधिगम के लिए प्रेरित हो जाता है। तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से विद्यार्थी एक भाषा के शब्द-भंडार, मुहावरे, लोकोक्ति, शब्दों के अर्थ-वैशिष्ट्य आदि से परिचित होता है। इससे उसकी जिज्ञासा का समाधान होता है, ज्ञान-समृद्धि आती है और भाषा-क्षेत्र में कार्य करने की प्रेरणा मिलती है।

7. व्यक्तित्व-विकास : अन्य भाषा अधिगम का उद्देश्य व्यक्तित्व का विकास भी है। मातृभाषा के शिक्षण से भी व्यक्तित्व का विकास होता है। परंतु जब व्यक्ति अन्य भाषा के संपर्क में आता है तो इस भाषा विशेष के क्षेत्र के निवासियों की रीति-रिवाज, खान-पान के साथ ही उनके आदर्शों, जीवन-मूल्यों, ज्ञान और विचारों से भी परिचित और प्रभावित होता है। इसका स्पष्ट प्रभाव उसके पूरे व्यक्तित्व पर पड़ता है। बाहर आने-जाने, अन्य लोगों से बातचीत करने, उन्हें प्रभावित करने की क्षमता का विकास होने से उसका आत्मविश्वास बढ़ता है। भिन्न समाज और संस्कृति को जानने-परखने से व्यक्ति की चित्तवृत्तियों का परिष्कार होता है, उसमें सहिष्णुता बढ़ती है। स्वार्थ भावना से ऊपर उठकर व्यक्ति पूरे समाज के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाता है।

8.जिज्ञासा की संतुष्टि : विद्यार्थी जब अन्य भाषा सीखने की ओर अग्रसर होता है तब वह निश्चित उद्देश्य लेकर आता है। परंतु लक्ष्य भाषा में गति होने पर वह उस समाज के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि पक्षों को भी जानना चाहता है। भाषा में रुचि रखनेवाले विद्यार्थी की रुचि लक्ष्य भाषा की संरचना में हो सकती है। तात्पर्य यह है कि विद्यार्थी अपनी रुचि के अनुसार लक्ष्य भाषा समाज के किसी क्षेत्र विशेष में जिज्ञासा रखता है और उस जिज्ञासा का शमन अन्य भाषा-शिक्षण के माध्यम से करता है।

9. आत्माभिव्यक्ति : अन्य भाषा-शिक्षण का एक उद्देश्य यह भी रहता है कि विद्यार्थी आत्माभिव्यक्ति कर सके। यह सही है कि आत्माभिव्यक्ति मातृभाषा में भी हो सकती है, परंतु मानव मस्तिष्क बहुत जटिल है, वह सामान्य से संतुष्ट नहीं होता। इसलिए अनेक व्यक्ति विदेशी भाषाओं में साहित्य रचना करते हैं। भारत में खुशवंत सिंह सरीखे साहित्यकार हैं जो 'पंजाबी' के स्थान पर अंग्रेज़ी में लेखन पसंद करते हैं। इसी प्रकार अन्य हिंदीतर भाषाभाषी भी हिन्दी में रचनाएँ करते रहते हैं। इस दृष्टि से आत्माभिव्यक्ति को भी अन्य भाषा-शिक्षण का एक प्रयोजन माना जा सकता है।"[2]

भाषा-शिक्षा वस्तुतः विद्यार्थी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को विकसित करने का माध्यम है। यहाँ यह जिज्ञासा हो सकती है कि विद्यार्थी जिस एक अथवा एकाधिक प्रयोजनों से भाषा-शिक्षण की ओर अग्रसर होता है उनकी सिद्धि भी कर पाता है या नहीं। वस्तुतः 'सिद्धि' पक्ष विद्यार्थी से सम्बद्ध है, शिक्षक से नहीं। शिक्षक उस सिद्धि में प्रेरक का कार्य अवश्य कर सकता है। विद्यार्थी की दृष्टि से सोचे तो वर्ण, शब्द, रूप-रचना, वाक्य-रचना आदि के स्तरपर विद्यार्थी ने अपेक्षित ज्ञान प्राप्त किया अथवा नहीं, इसकी जानकारी तो परीक्षण-मूल्यांकन के माध्यम से ही हो जाती है और विद्यार्थी में इन कौशलों को बढ़ाने के प्रयास भी किए जा सकते हैं। भाषा-शिक्षण के बृहत्तर उद्देश्यों के संबंध में इतना तो निश्चित है कि उन सभी उद्देश्यों की सिद्धि एक सीमा तक तो अवश्य होती है परंतु यह सिद्धि तभी सम्यक बनती है जब विद्यार्थी का चारों भाषाई कौशलों पर पूर्ण अधिकार हो जाए। वस्तुतः यह एक सतत चलने वाली प्रक्रिया है। भाषा-शिक्षण के समय जिन निश्चित प्रयोजनों के साथ विद्यार्थी आगे बढ़ता है, शिक्षण के माध्यम से उनकी सिद्धि का प्रयास उम्रभर करता रहता है। यही भाषा-शिक्षण के प्रयोजनों की सीमा भी है और शक्ति भी।

2.3 अन्य भाषा-शिक्षण की पद्धतियाँ

डॉ॰ मुकेश अग्रवाल के अनुसार अन्य भाषा-शिक्षण की पद्धतियों की संख्या विद्वानों ने लगभग पचास तक बताई है। प्रमुख शिक्षाविद विलियम फ्रांसिस मैके के अनुसार मुख्य शिक्षण-पद्धतियाँ पंद्रह हैं -

"1.प्रत्यक्ष पद्धति, 2.पठन पद्धति, 3.व्याकरण पद्धति, 4.मनोवैज्ञानिक पद्धति, 5.ध्वनि वैज्ञानिक पद्धति, 6.स्वाभाविक पद्धति, 7.सम्मिश्रण पद्धति, 8.इकाई पद्धति, 9.द्विभाषीय पद्धति, 10.अनुवाद पद्धति, 11. व्याकरण-अनुवाद पद्धति, 12. सजातीय पद्धति, 13. अभ्यास-सिद्धांत पद्धति, 14. अनुकरणात्मक पद्धति, 15. भाषा-नियंत्रण पद्धति ।"[3]

डॉ॰ मुकेश अग्रवाल के अनुसार अन्य प्रमुख शिक्षण पद्धतियाँ निम्नलिखित हैं -

"1.स्वयं शिक्षक पद्धति, 2.वार्तालाप पद्धति, 3. संभाषण पद्धति, 4. श्रवण-भाषण पद्धति, 5. संदर्भ पद्धति, 6.भाषा प्रयोगशाला पद्धति, 7.चलचित्र पद्धति, 8.आधार पद्धति, 9.सरलीकरण पद्धति, 10. मौखिक पद्धति, 11.रचना पद्धति, 12.चयन पद्धति, 13.सुझावपरक पद्धति, आदि ।"[4]

इनमें से कुछ पद्धतियों पर नीचे विचार किया जा रहा है -

1.प्रत्यक्ष पद्धति : इस पद्धति में विद्यार्थी को अन्य भाषा का ज्ञान मातृभाषा के समान ही कराया जाता है। पहले कुछ सप्ताहों में श्रवण तथा अनुकरण द्वारा भाषा का बोध कराया जाता है। इसके पश्चात पढ़ने और लिखने पर बल दिया जाता है। मूर्त वस्तुओं का ज्ञान कराने के लिए वस्तुओं अथवा उनके चित्रों का सहारा लिया जाता है। वार्तालाप करते समय अथवा पाठ तैयार करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि व्याकरणिक संरचनाएँ तथा अनुस्तरित शब्द भंडार उसमें सहज रूप से आ जाएँ। इस प्रकार मातृभाषा तथा अनुवाद को बीच में लाए बिना भाषा को विद्यार्थी की आदत बनाने का प्रयास किया जाता है।

स्वाभाविक पद्धति, मनोवैज्ञानिक पद्धति, ध्वनि वैज्ञानिक पद्धति, भाषा-नियंत्रण पद्धति, अनुकरणात्मक पद्धति तथा अभ्यास पद्धति भी एक सीमा तक प्रत्यक्ष पद्धति से मिलती-जुलती हैं। ये भी भाषा को विद्यार्थी की आदत बनाने पर बल देती हैं।

प्रत्यक्ष पद्धति के निम्नलिखित लाभ हैं -

क. इस पद्धति में विद्यार्थी को अध्येय भाषा में अन्य भाषा का ज्ञान प्राप्त होता है, जिससे उसमें अन्य भाषा की आदत भी मातृभाषा के समान ही पड़ती है।

ख. यह पद्धति व्याकरण के नियमों को रटने पर बल नहीं देती बल्कि विद्यार्थी वास्तविक प्रयोग के आधार पर भाषा को सीखता है और व्याकरण के नियमों को सहज रूप से हृदयंगम करता है।

ग. इस पद्धति में आवश्यकतानुसार यथार्थ वस्तु, प्रतिरूप, चित्र, रेखाचित्र आदि का उपयोग कर शब्दों के अर्थ की जानकारी कराई जाती है, अतः यह ज्ञान अधिक स्थायी होता है। विभिन्न संकेतों, मुखमुद्राओं, अनुकरण, अभिनय आदि की सहायता से दिया जाने वाला क्रिया-व्यापार-ज्ञान भी रोचक विधि से दिया जाने के कारण स्थायी महत्व का होता है।

घ. प्रत्यक्ष पद्धति में अन्य भाषा के शब्दों, वाक्यांशों, पदबन्धों, वाक्यों आदि का ज्ञान दिन-प्रतिदिन की आवश्यकताओं के व्यावहारिक संदर्भ में दिया जाता है। विद्यार्थी उन्हें नित-प्रति की बातचीत में प्रयोग करते हैं। अतः वह ज्ञान व्यावहारिक ज्ञान होता है जो सहज रूप से उनकी जीवन-शैली और व्यवहार में उतार जाता है।

ङ. इस पद्धति में अध्यापक और विद्यार्थी दोनों ही निरंतर सजग और सतर्क रहते हैं क्योंकि विद्यार्थी को मौखिक पद्धति से वाचन का अभ्यास कराने से प्रारम्भ कर लेखन के अभ्यास तक सब कुछ परिचित संदर्भों, क्रियाओं आदि के माध्यम से कराया जाता है।

इस कारण विद्यार्थी की पीठ में रुचि भी बनी रहती है। परिचित संदर्भों, वस्तुओं आदि के कारण पाठ-बिन्दु भी अधिक वस्तुनिष्ठ बनाए जा सकते हैं।

च. इस पद्धति में मात्र अध्येय भाषा को माध्यम बनाने के कारण विद्यार्थी भाषा और समाज में अंतर्निहित संस्कृति से भी परिचित होता चलता है जो अनुवाद आदि पद्धतियों से संभव नहीं है।

प्रत्यक्ष पद्धति की अनेक सीमाएँ हैं :

क.इसमें मात्र अन्य भाषा का ही प्रयोग किया जाता है परंतु भाषा न सीखने तक अनेक ऐसे बिन्दु होते हैं जो विद्यार्थी जानना चाहता है परंतु उसकी मातृभाषा का उपयोग न होने के कारण समझ नहीं पाता। प्रायः माना जाता है कि मातृभाषा का आधार लेने पर व्याघात की समस्या आ सकती है परंतु तथ्य यह है मातृभाषा का व्याघात तो हर स्थिति में आता ही है।

ख.इस पद्धति में यह मान लिया जाता है कि मातृभाषा और अन्य भाषा दोनों को समान तरीके से पढ़ाया जा सकता है, परंतु यह संभव नहीं है। मातृभाषा में विद्यार्थी के सम्मुख सभी संदर्भ परिचित होते हैं जबकि अन्य भाषा में आरोपित संदर्भों को परिचित मानकर अध्यापन किया जाता है।

ग.इस पद्धति में विद्यार्थी को संरचना के आधार पर व्याकरणिक नियम स्वयं निर्धारित करने पड़ते हैं, परंतु सभी विद्यार्थियों की योग्यता समान नहीं होती और इसलिए सभी समान रूप से सभी नियमों को हृदयंगम नहीं कर पाते।

घ.वार्तालाप के माध्यम से भाषा सिखाने पर विद्यार्थी को एक साथ अनेक संरचनाओं का प्रयोग करना पड़ता है। इससे संरचना-शिक्षण व्यवस्थित रूप से नहीं हो पाता। साथ ही

इसमें ऐसी संरचनाएँ भी हो सकती हैं जिनका अभ्यास विद्यार्थी ने पहले न किया हो; उनके प्रयोग में विद्यार्थी को कठिनाई हो सकती है।

ङ.यह पद्धति अधिक श्रम-साध्य भी है। यथार्थ वस्तु, चित्र, प्रतिरूप आदि का सदैव मिल पाना कठिन होता है और रेखाचित्र आदि का निर्माण अधिक कौशल की अपेक्षा रखता है।

च.यह पद्धति अधिक सफल तभी हो सकती है जब विद्यार्थी उसी भाषा-भाषी समाज में रहे, जिस भाषा को वह सीख रहा है। केवल कक्षा में इस पद्धति से भाषा-शिक्षण बहुत सफल नहीं हो सकता।

2.पठन पद्धति : इस पद्धति का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थी को अन्य भाषा के वाचन का ज्ञान प्रदान करना है। इसके लिए पाठ सामग्री को छोटे-छोटे भागों में विभक्त करके चित्र अथवा अनुवाद आदि के माध्यम से विद्यार्थी को शब्द बोध कराया जाता है और फिर अनुस्तरित (graded) तरीके से उसके शब्द भंडार को विकसित करने का प्रयास किया जाता है। साथ ही विद्यार्थी को व्याकरणिक संकेत भी दिए जाते हैं। फिर विद्यार्थी सरल कहानियों और सरलीकृत उपन्यासों की ओर अग्रसर होता है। पुस्तकालयी भाषा के ज्ञान के लिए यह पद्धति अच्छी है।

3.व्याकरणिक पद्धति : इस पद्धति से भाषा-शिक्षण के लिए पहले भाषा के व्याकरण-संबंधी सूत्र विद्यार्थी को रटाए जाते हैं। कुछ शब्दावली का ज्ञान ही जाने के बाद विद्यार्थी वाक्य-रचना का अभ्यास करता है। इस पद्धति में विद्यार्थी को उच्चारण-पद्धति प्रत्यक्ष रूप में नहीं सिखाई जाती। अतः विद्यार्थी को भाषा के सम्यक ज्ञान के लिए अधिक परिश्रम करना पड़ता है। व्याकरण-ज्ञान के पश्चात प्रायः साहित्यिक पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं, अतः इस पद्धति से विद्यार्थी को साहित्यिक भाषा की तुलना में बोलचाल की भाषा का ज्ञान कम होता है।

4.सम्मिश्रण पद्धति : सम्मिश्रण शिक्षण-पद्धति किसी शिक्षण-सिद्धान्त पर आश्रित नहीं है। इसका अर्थ है भाषा-शिक्षण के उद्देश्य, विद्यार्थी की क्षमता और सीखी जानेवाली भाषा की प्रकृति को आधार बनाकर शिक्षक भिन्न-भिन्न विधियों की मदद लेता है। परिस्थिति-विशेष में उसे अपनी शिक्षण-पद्धति में परिवर्तन भी करना पड़ता है। अतः एक शिक्षण पद्धति के स्थान पर आवश्यकतानुसार एकाधिक शिक्षण-पद्धतियों का उपयोग करने के कारण उसमें विभिन्न पद्धतियों की विशेषताओं का लाभ उठाया जा सकता है। विद्यार्थी की मानसिकता, उसके स्तर और भाषा अधिगम के उद्देश्य के अनुसार अध्यापक किसी विधि-विशेष का चयन कर सकता है।

5.इकाई पद्धति : इस पद्धति में सर्वप्रथम कक्षा की रुचि का कोई एक विषय लिया जाता है, जैसे - यात्रा, उत्सव, खेल आदि। कुछ विद्यार्थी उस विषय पर मातृभाषा में एक वार्तालाप तैयार करते हैं और अध्यापक लक्ष्य भाषा में उसका अनुवाद करता है। फिर विद्यार्थी संवाद रूप में उस वार्तालाप को दोहराते हैं। मातृभाषा में उसका पहले से ज्ञान रहने के कारण विद्यार्थी की रुचि भी संवाद में बनी रहती है। इसके बाद शब्द-भंडार आदि का अभ्यास कराया जाता है।

6.द्विभाषीय पद्धति : इस पद्धति में मातृभाषा तथा अन्य भाषा में उपलब्ध समानताओं और विषमताओं के आधार पर पाठ-सामग्री का निर्माण किया जाता है। ध्वनि, शब्द, पद, व्याकरण, वाक्य-रचना आदि के स्तर पर उपलब्ध साम्य एवं वैषम्य का ज्ञान विद्यार्थी को मातृभाषा के माध्यम से कराया जाता है। वैषम्य को ध्यान में रखकर ही अभिरचना-अभ्यास तैयार किए जाते हैं।

7.अनुवाद पद्धति : यह अन्य भाषा-शिक्षण की सबसे प्राचीन पद्धति है। इस पद्धति में विद्यार्थी पहले पाठ्य-सामग्री का लक्ष्य भाषा में अनुवाद करता है। अनुवाद की सामग्री सरल से कठिन की ओर बढ़ती है। इसमें सिर्फ़ शब्दानुवाद पर ही बल नहीं दिया जाता

बल्कि भाव भी अनुवाद में पूर्ण रूप से आए इसका भी पूर्ण ध्यान रखा जाता है। इसके लिए प्रारम्भ में छोटी सरल कहानियाँ और बाद में अन्य प्रकार की सामग्री ली जा सकती है। इसके पश्चात उसे कुछ अन्य अभ्यास भी दिए जा सकते हैं। विद्यार्थी के लिए अशुद्धि-शोधन के रूप में व्याकरण का ज्ञान प्राप्त करना भी आवश्यक हो जाता है। साथ ही, उसका शब्द भंडार भी समृद्ध होता जाता है। इस विधि से एक बार में अनेक विद्यार्थियों को शिक्षा दी जा जा सकती है। विद्यार्थी अनुवाद करना सीख जाता है, उसे दोनों भाषाओं का तुलनात्मक ज्ञान भी प्राप्त हो जाता है परंतु अन्य भाषा में दक्षता प्राप्त नहीं हो पाती। श्रवण एवं वाचन कौशल का भी पूर्ण विकास नहीं हो पाता।

8.व्याकरण-अनुवाद पद्धति : उन्नीसवीं सदी के अंत तक यह भाषा-शिक्षण की सर्वाधिक मान्य पद्धति थी। यह पद्धति व्याकरण पद्धति तथा अनुवाद पद्धति का मिश्रण है। उपयुक्त सूत्रों के माध्यम से अन्य भाषा की संरचना को समझना इस पद्धति का लक्ष्य है। पाठ्य सामग्री पर आधारित शब्द-भंडार का ज्ञान विद्यार्थी को कराया जाता है। अपेकषा की जाती है कि सूत्रों और शब्दों से प्रारम्भ कर विद्यार्थी अनुवाद के माध्यम से भाषा का ज्ञान प्राप्त करे। वह कारक, काल, लिंग-भेद आदि से संबन्धित नियम याद करे और द्विभाषी कोशों की सहायता से अनुवाद कर भाषा का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करे। इस पद्धति में भी विद्यार्थी को रटना बहुत अधिक पड़ता है। इस पद्धति से विद्यार्थी में लिखित भाषा को समझने तथा अनुवाद की क्षमता का पर्याप्त विकास हो जाता है। अन्य भाषा के नियमों और अपवादों की पूरी जानकारी मिल जाती है।

व्याकरण-अनुवाद पद्धति की निम्नलिखित सीमाएँ हैं :

क.इसमें विद्यार्थी का अन्य भाषा सम्बन्धी ज्ञान सिर्फ उसके सैद्धांतिक पक्ष तक सीमित रह जाता है। भाषा को व्यावहारिक रूप में सुनने, बोलने आदि का अभ्यास न होने के

कारण वार्तालाप के समय विद्यार्थी की बोलने और समझने की क्षमता प;अंगुआ दिखाई देती है। अतः अन्य भाषा-शिक्षण का उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है।

ख.सैद्धान्तिक पक्ष को ही महत्व देने के कारण भाषा की यह पद्धति लिखित और मानक रूप को ही प्रमुखता देती है। इस प्रकार यह भाषा के जीवनतता नामक तत्व की उपेक्षा करती है। अपने जीवंत रूप में भाषा बहुआयामी होती है, परंतु इसमें उसके मात्र एक आयाम पर बल दिया जाता है, फलतः विद्यार्थी को भाषा का व्यावहारिक ज्ञान नहीं हो पता।

ग. यह पद्धति भाषा-शिक्षण के इस सामान्य नियम की उपेक्षा करती है कि नियमों से भाषा नहीं सीखी जाती बल्कि बच्चा भाषा सीखकर स्वयं नियमों को हृदयंगम करता है। इसमें तो नियमों को स्वायत्त एवं स्वतंत्र इकाई मानकर रटाने पर बल दिया जाता है फलतः विद्यार्थी में अन्य भाषा के प्रति अरुचि उत्पन्न हो जाती है।

घ.इस पद्धति में भाषा का प्रयोग वास्तविक सामाजिक संदर्भों में नहीं किया जाता। वास्तव में यह संदर्भ ही भाषा-अधिगम में उद्दीपन का कार्य करते हैं। उद्दीपन के अभाव में अधिगम-प्रक्रिया नीरस हो जाती है।

ङ.इसमें विद्यार्थी को शब्द-सूचियाँ रटने के लिए दे दी जाती हैं जो कि अत्यंत कठिन और नीरस कार्य है। सिर्फ तीव्र बुद्धि वाले विद्यार्थी ही इस कार्य में सफल हो सकते हैं।

च.इससे चारों कौशलों - सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना - का पूर्ण विकास नहीं हो पाता, सिर्फ अनुवाद की क्षमता का विकास हो जाता है।

छ.यह भी संभावना रहती है कि अन्य भाषा के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश से पूर्णतः परिचित न होने के कारण भाव तथा शब्द के स्तर पर विद्यार्थी कि मातृभाषा व्याघात उत्पन्न करे और विद्यार्थी अन्य भाषा को ठीक से न समझ पाए।

ज.रटने पर आधारित होने के कारण यह पद्धति उबाऊ है।

9.सजातीय पद्धति : इस पद्धति में मातृभाषा तथा लक्ष्य भाषा के बीच उपलब्ध समानताओं को आधार बनाया जाता है। शब्द, रूप, अर्थ आदि के स्तर पर खोजी जाने वाली ये विशेषताएँ समान भाषा-परिवार की भाषाओं में तो एक सीमा तक मिल भी सकती हैं परंतु अन्य भाषाओं में इसकी संभावना बहुत कम होती है। अतः एक भाषा-परिवार की भाषाओं में इसकी संभावना बहुत कम होती है। अतः एक भाषा-परिवार की भाषाओं में उपलब्ध समानता के आधार पर इस पद्धति की सफलता का प्रतिशत अधिक हो सकता है परंतु अन्य भाषाएँ इस पद्धति से नहीं सीखी जा सकतीं।

10.स्वयं शिक्षक पद्धति : इस पद्धति में मातृभाषा से भिन्न भाषाएँ सिखाने वाली पुस्तकों के माध्यम से व्यक्ति स्वयं अपनी पहले सीखी किसी भाषा के माध्यम से भाषा सीखता एवं उसका अभ्यास करता है। पुस्तक के बीच-बीच में कुछ अनुवाद के अभ्यास भी दिए जाते हैं जिससे विद्यार्थी उनका अभ्यास कर भाषा पर अधिकार प्राप्त करता है। किसी अन्य की मदद अथवा सहयोग के अभाव में व्यक्ति एक सीमा तक ही यह अधिकार प्राप्त कर सकता है। ऐसे विद्यार्थी की भाषा को बोलने व लिखने की क्षमता सीमित ही होती है। यह पद्धति श्रमसाध्य होने पर भी विद्यार्थी को भाषा का अल्प ज्ञान ही प्रदान कर पाती है। यह पद्धति सुविधाजनक एवं सस्ती है तथा इससे विद्यार्थी अवकाश के समय भाषा सीख सकता है, परंतु इसका उपयोग बहुत सीमित है।

11.श्रवण-भाषण पद्धति : इस पद्धति में चारों भाषाई कौशलों (श्रवण, भाषण, वाचन, लेखन) पर पूर्ण ध्यान दिया जाता है। इसमें विद्यार्थी पहले भाषा सुनता है और फिर बोलकर उसका अभ्यास करता है, इसलिए इसे श्रवण-भाषण पद्धति कहा गया है। डॉ॰ भोलानाथ तिवारी के अनुसार -

“यह पद्धति तीन बातों पर आधारित है -

क.सांस्कृतिक मानववादियों कि यह धारणा कि भाषा अन्य सामाजिक कार्यों कि तरह 'आदतों का सेट' (set of habits) है,

ख.व्यवहारवादी मानववेत्ताओं की धारणा है कि भाषा प्रेरणा (stimulus) - अनुक्रिया (response) का क्रम है अर्थात् किसी भी रूप में कोई प्रेरणा मिलने पर व्यक्ति बोलता है,

ग.भाषा का वास्तविक रूप वह होता है जो मातृभाषी द्वारा बोला जाता है न कि वह रूप जो व्याकरण में दिया जाता है ।"5

इस पद्धति में अध्यापक पहले भाषा के मूलभूत वाक्य बोलता है और विद्यार्थी उसे दोहराता है, इस प्रकार भाषा कि मूलभूत संरचना विद्यार्थी के मस्तिष्क में बैठ जाती है। विद्यार्थी को पहले सरल और क्रमशः अपेक्षाकृत जटिल वाक्यों का अभ्यास कराया जाता है। यह अभ्यास प्रारम्भ में सामूहिक, टोलीगत और अंत में वैयक्तिक होता है। प्रारम्भ में सामूहिक आभास के माध्यम से विद्यार्थी को प्रोत्साहन मिलता है और वैयक्तिक अनुकरण के द्वारा उनका मूल्यांकन कर शोधन अथवा पुनः अभ्यास कराया जा सकता है। इसके बाद संरचनाओं को विविध संदर्भों में प्रयोग करना सिखाया जाता है। इसके पश्चात क्रमशः वाचन वा लेखन से विद्यार्थी को अवगत कराया जाता है। अभिरचना अभ्यास के पाठों से विद्यार्थी भाषा-प्रयोग का अभ्यस्त होता है। आवश्यकतानुसार भाषा-प्रयोगशाला की भी मदद ली जाती है। धीरे-धीरे विद्यार्थी को भाषा-संरचना का इतना अभ्यास करा दिया जाता है कि वह भाषा उसकी आदत बन जाती है तथा चारों भाषाई कौशलों पर उसका अधिकार हो जाता है। यह सब विद्यार्थी को प्रत्यक्ष रूप से व्याकरणिक नियमों की जानकारी दिए बिना किया जाता है, इससे उसके ऊपर मानसिक दबाव नहीं आता। वह भाषा के नियम सहज रूप में सीखकर अन्य भाषा पर लगभग मातृभाषा-भाषी के समान अधिकार प्राप्त कर लेता है।

श्रवण-भाषण पद्धति के निम्नलिखित दोष हैं :

क.यांत्रिक व्यापार के समान होने के कारण कभी-कभी विद्यार्थी ऊबने लगता है।

ख.कक्षा के विद्यार्थियों का स्तर समान न होने के कारण कमज़ोर विद्यार्थियों को अधिक अभिरचना-अभ्यास कराया जाता है जिससे तीक्ष्ण बुद्धि विद्यार्थी ऊब सकता है।

12.संदर्भ पद्धति : श्रवण-भाषण पद्धति, संभाषण पद्धति और संदर्भ पद्धति लगभग एक समान ही हैं। संदर्भ पद्धति का वैशिष्ट्य यह है कि इसमें पाठ-सामग्री का चयन करते समय दैनंदिन जीवन के उपयोग की सामग्री, दैनिक जीवन में व्यक्ति के सम्मुख आने वाली परिस्थितियों, संदर्भ एवं घटनाओं को अधिक महत्व दिया जाता है। श्रवण-भाषण पद्धति के समान शिक्षण-सामग्री वार्तालाप के रूप में विद्यार्थी के सामने प्रस्तुत की जाती है। आवश्यकतानुसार छोटी-छोटी कहानियों अथवा सरल विवरणों के रूप में भी इसे प्रस्तुत किया जा सकता है।

13.मौखिक पद्धति : इसे ध्वन्यात्मक पद्धति भी कहा जाता है। इसमें पहले विद्यार्थी में श्रवण-कौशल की क्षमता करने के लिए उपयुक्त सामग्री का चयन किया जाता है और फिर उच्चारण-क्षमता का विकास किया जाता है। इस पद्धति में विद्यार्थी को क्रमशः ध्वनि, शब्द और वाक्य स्तर तक लाया जाता है और फिर सरल वार्तालाप, कहानियों आदि के माध्यम से शिक्षा दी जाती है। विद्यार्थी को श्रुतलेख आदि के माध्यम से लेखन का अभ्यास कराया जाता है।

14.रचना पद्धति : भाषा-शिक्षण की यह अपेक्षाकृत आधुनिक एवं उन्नति पद्धति है। इस पद्धति में प्रश्नोत्तर के माध्यम से अध्यापक छात्रों को भाषा की संरचना का ज्ञान कराता है। इसमें अर्थ के स्थान पर संरचना को अधिक महत्त्व दिया जाता है। इस पद्धति में वाक्य-रचना के आधार पर पाठ का विकास किया जाता है। विद्यार्थियों की बोलने की शैली, उच्चारण, शब्दावृत्ति का इस विधि के माध्यम से अपेक्षाकृत विकास होता है।

15.चयन पद्धति : इस पद्धति में प्रत्यक्ष पद्धति, व्याकरण पद्धति तथा अनुवाद पद्धति का समन्वय कर विद्यार्थी में सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखना के क्रम से भाषा-कौशलों का विकास किया जाता है। इसमें ज़ोर से पढ़ना, वार्तालाप तथा प्रश्नोत्तर पर पर्याप्त बल दिया जाता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि लगभग सभी पद्धतियों की कुछ-न-कुछ विशेषताएँ अथवा सीमाएँ हैं। अध्यापक को विद्यार्थी, शिक्षण-उद्देश्य, अन्य भाषा की प्रकृति आदि को ध्यान में रखते हुए विवेकपूर्वक एक अथवा अधिक पद्धतियों का चयन करना चाहिए।

2.4 द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी शिक्षण

द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी शिक्षण के बारे में भाषा विद्वान सूरजभान सिंह के अनुसार - भारत में द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन की औपचारिक शुरुआत सन् 1918 में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास की स्थापना के साथ माना जाना चाहिए, जिसके पीछे स्वयं महात्मा गांधी जैसे राष्ट्रीय नेता का हाथ था। वैसे, इससे पूर्व दो हिन्दी संस्थाएँ - नागरी प्रचारिणी सभा (1893), वाराणसी, और अखिल भारतीय हिन्दी सम्मेलन (1910), प्रयाग, पहले से ही कई स्तरों की परीक्षाओं के लिए पाठ्यक्रम चला रही थीं, लेकिन तकनीकी दृष्टि से इन्हें द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी शिक्षण नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इनके अधिकांश छात्र या परीक्षार्थी उत्तर भारत से ही थे।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के मॉडल पर धीरे-धीरे समस्त हिन्दी भाषी राज्यों में स्वैच्छिक हिन्दी संस्थाओं की एक पूरी शृंखला स्थापित हो गई और वस्तुतः स्वतन्त्रता से पूर्व हिन्दी के शिक्षण कार्यक्रमों को बड़े पैमाने पर संचालित तथा प्रसारित करने का एकमात्र दायित्व इन्हीं संस्थाओं ने निभाया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हिन्दी के शिक्षण कार्यों में, गुण तथा मात्रा दोनों स्तरों पर, कुछ नए आयाम जुड़ गए। संघ की राजभाषा के संबंध में निर्दिष्ट संवैधानिक दायित्वों के फलस्वरूप, अन्य कई कार्यों के साथ-साथ, हिन्दी शिक्षण कार्यक्रमों का विस्तार उन व्यवहार-क्षेत्रों में होना शुरू हुआ जहाँ अभी तक इसका प्रयोग नहीं हुआ था, जैसे प्रशासन, बैंक, शिक्षा और टेक्नालॉजी। ये शिक्षण कार्यक्रम दोहरे उद्देश्यों को लेकर चले थे - हिन्दी न जानने वाले लोगों को हिन्दी पढ़ाना तथा विभिन्न व्यवहार-क्षेत्रों में प्रयुक्त विशिष्ट भाषारूपों या प्रयुक्तियों का प्रशिक्षण देना।

लगभग इसी समय, द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी या अन्य भाषाओं के अध्ययन में संलग्न भारतीय भाषाविदों तथा शिक्षकों का ध्यान पश्चिम में भाषाविज्ञान तथा विदेशी भाषा शिक्षण के क्षेत्रों में हुए नए अनुसन्धानों तथा कार्यों की ओर आकृष्ट हुआ। नई भाषावैज्ञानिक विचारधाराओं में दीक्षित या विदेशों में प्रकाशित भाषावैज्ञानिकों ने, भारतीय परिवेश में नए तथा नई विकसित तकनीकों का उपयोग करते हुए, हिन्दी के लिए नई पाठ्यपुस्तकों, शिक्षण पद्धतियों तथा शिक्षण सामग्री का पुनर्निर्माण करना शुरू किया। द्वितीय या विदेशी भाषा शिक्षण अब तक नई विशेषज्ञता के रूप में विकसित हो चुका था और विशेषज्ञों का विषय माना जाने लगा था। फलतः जैसा कि स्वाभाविक था, भारत जैसे बहुभाषी देश में हिन्दी, अंग्रेज़ी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के अध्यापन कि जटिल समस्याओं के निराकरण के लिए शिक्षा के कर्णधारों की नज़र इन विशेषज्ञों पर जा टिकी। फलस्वरूप, भारत सरकार ने केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, केन्द्रीय भारतीय भाषा संस्थान, अंग्रेज़ी तथा विदेशी भाषा संस्थान तथा राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान जैसे भाषा-शिक्षण तथा अनुसंधानपरक विशेषज्ञ संस्थाओं की स्थापना की। ये संस्थाएँ उन संस्थाओं के अतिरिक्त हैं जो विशेष रूप से हिन्दी भाषा विकास तथा प्रसार के लिए स्थापित हुई थीं, जैसे केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, वैज्ञानिक तकनीकी शब्दावली आयोग तथा बाद में तरक्की उर्दू बोर्ड। इन सबके परिणामस्वरूप भाषाशिक्षण की तकनीक तथा पद्धतियों में आधुनिकीकरण

की प्रक्रिया शुरू हुई, जो स्वतन्त्रता पूर्व की व्याकरण-अनुवाद पद्धति की लीक से हटकर कौशल अभ्यासपरक पद्धति तथा संरचनावादी मान्यताओं के अधिक निकट थी। कुछ संस्थाओं में संप्रेषणफरक तथा कम्प्यूटर आधारित भाषा-शिक्षण की दिशा में भी प्रयास जारी है।

2.5 भाषा-शिक्षण में शिक्षण सामग्री एवं उनका मूल्यांकन

भाषा-शिक्षण सामग्री से अभिप्राय है वह सामग्री जो विद्यार्थी के भाषा-शिक्षण में सहायक हो। सहायक सामग्री के उपयोग से पाठ्य-सामग्री सरस, रोचक और बोधगम्य बनाया जा सकता है। इससे विषय को स्पष्ट करने में सहायता मिलती है। भाषा-शिक्षण का मुख्य उद्देश्य 'विद्यार्थी का भाषाई कौशलों में पूर्ण अधिकार' होता है। इसका अर्थ है कि विद्यार्थी विभिन्न विषयों को उचित रूप से हृदयंगम कर अपने विचारों को प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त कर सके। मातृभाषा-शिक्षण में विद्यार्थी का चारों कौशलों - श्रवण, भाषण, वाचन , लेखन पर पूर्ण अधिकार आवश्यक है जबकि अन्य भाषा-शिक्षण में भाषा-अधिगम उद्देश्यों के अनुकूल दो-तीन अथवा चारों कौशलों पर विद्यार्थी के अधिकार का प्रयास किया जाता है।

2.5.1 शिक्षण सामग्री के प्रकार

लक्ष्मीनारायण शर्मा ने अपनी पुस्तक शिक्षण सामग्री निर्माण : सिद्धान्त और प्रविधि में भाषा-शिक्षण के उपयोग में आने वाली सामग्री को तीन भागों में बाँटा है। उनके अनुसार, "जितनी भी शिक्षण-सामग्री बनाई जा सकती है, उन सबका ज्ञानेन्द्रिय प्रयोग प्रमुखता के आधार पर मुख्य तीन उपवर्गों में बाँटा जा सकता है - 1.दृश्य शिक्षण सामग्री, 2.श्रव्य शिक्षण सामग्री, 3.स्पर्श शिक्षण सामग्री।"6

दृश्य शिक्षण सामग्री :

भाषा-शिक्षण के सहायक उपकरणों में दृश्य सामग्री का विशिष्ट स्थान है। विद्यार्थी किसी शब्द का अर्थ तो जान लेता है परंतु उसकी संकल्पना में कोई कमी भी रह सकती है। यदि वह उस चीज़ अथवा उसके प्रतिरूप को देख ले तो उसकी स्मृति स्थायी हो जाती है। डॉ॰ किशोरी लाल शर्मा ने 'हिन्दी शिक्षण : श्रव्य - दृश्य प्रक्रिया' में दृश्य उपकरणों को दो भागों में बाँटा है-

1.अप्रक्षेपित (यथार्थ वस्तुएँ, पाठ्य पुस्तक, पट्ट (बोर्ड), चित्र तथा छायाचित्र, रेखाचित्र, व्यंग्यचित्र, सारणी तथा मानचित्र, चार्ट, वस्तु-प्रतिरूप, फ्लैश कार्ड)

2.प्रक्षेपित (चलचित्र, चित्रपट्टी, फलक तथा अन्य मूक चित्र आदि)

प्रमुख दृश्य सामग्री का विस्तृत विवेचन निम्नलिखित है -

"1.यथार्थ वस्तुएँ : यथार्थ वस्तुओं का प्रदर्शन विषयवस्तु के स्पष्टीकरण में विशेष रूप से सहायक है। विद्यार्थी इसका अनुभव प्रत्यक्ष रूप से कर सकता है। यह अनुभव स्थायी होता है। यह अवश्य है कि कक्षा में यथार्थ वस्तुओं को सीमित संख्या में ही दिखा सकना संभव है। परंतु यदि अनार का पेड़ बताते समय उसकी डाली अथवा गुलाबजामुन पढ़ाते समय गुलाबजामुन कक्षा में दिखाया जा सके, तो अन्य भाषा-शिक्षण में विद्यार्थी को इससे विशेष लाभ हो सकता है।

2.पाठ्य पुस्तक : भाषा-शिक्षण में पाठ्य पुस्तक एक अहम् भूमिका निभाती है। वाचन भाषा-कौशल के विकास में पाठ्य-पुस्तक की प्रभावी भूमिका होती है। इसके माध्यम से सरल कविताओं, कहानियों आदि का वाचन कराया जा सकता है। भाषा-संरचना तथा अभिरचना-अभ्यास की दृष्टि से भी पाठ्य-पुस्तकों का पर्याप्त महत्त्व है।

3.पट्ट : पाठ्य-पुस्तकों के बाद 'पट्ट' सर्वाधिक लोकप्रिय एवं सुलभ उपकरण हैं। भारत जैसे देश में सर्वाधिक सुलभ साधन पट्ट ही है। पहले ये काले रंग के होते थे अतः इन्हें

श्यामपट्ट कहा जाता था परंतु अब हरे रंग के पट्ट सहज उपलब्ध होते हैं। पट्ट पर सफ़ेद अथवा रंगीन चॉक का प्रयोग किया जाता है। पट्ट पर एक बार में आवश्यकता से अधिक नहीं लिखना चाहिए। अनावश्यक बातों को मिटाते रहना चाहिए तथा आवश्यकतानुसार रंगीन चॉक का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। इसका प्रयोग शब्दों की सही वर्तनी का ज्ञान देने, शब्द-निर्माण की प्रक्रिया को स्पष्ट करने, सूक्तियों, मुहावरों-लोकोक्तियों का अर्थ स्पष्ट करने, सरल रेखाचित्र, चित्र, मानचित्र, ग्राफ़ आदि बनाने के लिए किया जा सकता है।

4.चित्र तथा छायाचित्र : चित्रा तथा छायाचित्र भाषा-शिक्षण का आकर्षक माध्यम है। कवियों, लेखकों, महापुरुषों आदि के चित्र दिखाकर विद्यार्थी में पाठ के प्रति रुचि उत्पन्न की जा सकती है। इनसे वातावरण-निर्माण में मदद मिलती है और छात्रों पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। सांस्कृतिक दृष्टि से चित्रों का बहुत अधिक महत्त्व है। विशेषतः अन्य भाषा-शिक्षण में जहाँ विद्यार्थी को दूसरे देश/प्रदेश की सांस्कृतिक स्थिति-पहनावा, रीति-रिवाज, धर्म-संस्कार आदि की जानकारी देनी हो, वहाँ चित्रों से बहुत मदद मिलती है। परंतु इस संबंध में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि चित्र आकर्षक हों,उनका आकार बड़ा हो, जिससे उसे सभी विद्यार्थी स्पष्ट रूप से देख सकें तथा उनमें तथ्य-विशेष का ही प्रदर्शन हो। छायाचित्र अथवा फोटो का भी वही महत्त्व है जो चित्रों का है। इनकी प्रामाणिकता असंदिग्ध होती है।

5.रेखाचित्र : चित्र अथवा प्रतिकृति उपलब्ध ण होने पर रेखाचित्र का भी सहारा लिया जा सकता है। रेखाचित्र के माध्यम से कोई क्रिया, तथ्य अथवा आकृति अंकित कर विद्यार्थी को सहज एवं रोचक तरीके से समझाया जा सकता है।

6.व्यंग्यचित्र : चित्र तथा रेखाचित्र से भी अधिक आकर्षक होता है - व्यंग्यचित्र। पाठ को रोचक बनाने में तथा कक्षा की एकरसता को भंग करने में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका

रहती है। इनसे गंभीर भावों को भी सहज रूप में स्पष्ट किया जा सकता है। इनका प्रभाव स्थायी होता है। अन्य भाषा-शिक्षण में प्रौढ़ विद्यार्थी के लिए यह अधिक रोचक होता है।

7.सारणी तथा मानचित्र : व्याकरण के अनेक विषयों की जानकारी देने तथा तुलनात्मक रूपों के शिक्षण की दृष्टि से सारणी का पर्याप्त महत्त्व है। अन्य भाषा-शिक्षण में व्यतिरेकी विश्लेषण के लिए इनका के लिए इनका उपयोग किया जा सकता है। विषय-वस्तु को स्पष्ट करने के लिए मानचित्रों का उपयोग भी किया जा सकता है। विशेष रूप से भाषा-शिक्षण में हिन्दी तथा विभिन्न बोलियों के क्षेत्र को स्पष्ट करने, किसी विशेष स्थल के महत्त्व, जनसंख्या, उपज, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक घटनाओं आदि का ज्ञान कराने के लिए ये विशेष रूप से उपयोगी है।

8.चार्ट : चार्ट का भी भाषा-शिक्षण में उपयोग किया जा सकता है। शब्दों के उच्चारण, वर्तनी, भाषा-संरचना आदि से संबन्धित जानकारी चार्ट के माध्यम से दी जा सकती है। चार्ट प्रदर्शनीय होने चाहिए ताकि विद्यार्थी उनकी ओर आकर्षित हो सकें। चार्ट पर लिखे अक्षर सुबोध, स्पष्ट एवं बड़े होने चाहिए ताकि विद्यार्थी उन्हें स्पष्ट रूप से देख सके तथा उसे पठन में सुविधा हो।

9.वस्तु-प्रतिरूप : इसे प्रतिमूर्ति भी कहा जाता है। प्रायः कक्षा में वास्तविक वस्तु को दिखाना संभव नहीं होता और चित्रा से वस्तु के यथार्थ स्वरूप का परिचय नहीं मिलता। एसी स्थिति में प्रतिरूप का प्रदर्शन करना उपयोगी रहता है। उदाहरणार्थ, ताजमहल, लाल किल्ला या कुतुबमीनार का वर्णन करते समय प्रतिरूप भवन के यथार्थ, उसकी लम्बाई-चौड़ाई के अनुपात को विद्यार्थी के सम्मुख प्रस्तुत कर देते हैं। अध्यापक स्वयं प्रतिरूप बना सकता है अथवा बाज़ार से ले सकता है परंतु वह यथार्थ ही लगना चाहिए। प्रतिरूप का आकार ऐसा हो कि पूरी कक्षा उसे स्पष्ट रूप से देख सके तथा उसकी विशिष्टाओं को समझ सके।

10.फ्लैश कार्ड : भाषा-शिक्षण और विशेषतः अन्य भाषा-शिक्षण में फ्लैश कार्डों का महत्व निर्विवाद है। फ्लैश कार्ड्स को पाठ की आवश्यकतानुसार तैयार किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, वर्तनी सिखाने के लिए स्वरों, व्यंजनों और मात्राओं के कार्ड्स तैयार किए जाते हैं। वाक्य-संरचना की जानकारी देने, संज्ञा, सर्वनाम, विशेषणों की सही जानकारी अथवा शब्दार्थ की जानकारी देने के लिए भी इनका प्रयोग किया जाता है। इनका आकार बड़ा होता है तथा आवश्यकतानुसार इन पर चित्र भी बनाए जाते हैं। विद्युत के समान तीव्र गति से प्रभाव डालने के कारण इन्हें फ्लैश कार्ड कहा जाता है।

11.प्रक्षेपक : प्रक्षेपकों में विशेष लेंस की सहायता से पाठ्य-सामग्री विद्यार्थी को दिखाई जाती है। प्रक्षेपक कई प्रकार के होते हैं :

क.ओवर हैड प्रक्षेपक : विभिन्न प्रकार के रेखाचित्र, मानचित्र, तुलनात्मक अध्ययन आदि से संबन्धित सारणियाँ, प्लास्टिक शीटों पर बने छोटे-छोटे दृश्य आदि इस प्रक्षेपक की मदद से विद्यार्थी को बड़े रूप/आकार में स्पष्ट रूप में दिखाए जा सकते हैं।

ख.स्लाइड प्रक्षेपक : इसके माध्यम से भी छोटी चीजों को बड़े आकार में प्रस्तुत किया जाता है। इसमें विशेष रूप से तैयार की गई स्लाइडें प्रयोग में लाई जाती हैं। भाषा-शिक्षण में ध्वनियों के उच्चारण-स्थान तथा उच्चारण-प्रक्रिया के समय वाक् अवयवों की स्थिति आदि को इसकी सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है।

ग.एपीडाइस्कोप : इसे अपारदर्शी प्रक्षेपक या ओपेक प्रोजेक्टर भी कहते हैं। इसकी सहायता से सभी अपारदर्शी वस्तुएँ सहजता से दिखाई जा सकती हैं। पुस्तक का कोई पृष्ठ, चित्र, फोटो, प्रतिकृति, स्लाइड आदि किसी भी चीज़ को प्रोजेक्टर के नीचे ट्रे में रखकर उसे बड़े आकार में दिखाया जा सकता है। भाषा तथा साहित्य के महत्त्वपूर्ण अभ्यास-पाठ, वर्ण, वर्तनी, वार्तालाप, कहानी आदि के शिक्षण में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती

है। यह एक महँगा उपकरण है तथा इसके प्रयोग के समय कमरे में अँधेरा रखना आवश्यक है। अतः इसका उपयोग सदैव एवं सर्वत्र नहीं किया जा सकता।

12.चित्रपट्टी : चित्रपट्टी अथवा फिल्म स्ट्रिप का प्रयोग शिक्षण को रोचक व प्रभाशाली बनाता है। इस माध्यम में किसी दर्शनीय स्थान, संगोष्ठी आदि की फिल्म बना ली जाती है और फिर उसको प्रोजेक्टर की सहायता से कक्षा में दिखाया जाता है। चित्रपट्टी अधिक लम्बी नहीं होनी चाहिए अन्यथा विद्यार्थी ऊब सकता है।"[7]

श्रव्य शिक्षण सामग्री : श्रव्य शिक्षण सामग्री से तात्पर्य उन साधनों से हैं जो भाषा के श्रवण कौशल के विकास में मदद करते हैं। इन साधनों की सहायता से ध्वनि-विश्लेषण, ध्वनि भेद तथा ध्वनि सम्प्रेषण आदि को सीखने में मदद मिलती हैं। प्रमुख श्रव्य शिक्षण सामग्री निम्नलिखित हैं :

"1.लिंग्वाफोन एवं लिंग्वारिकॉर्ड : इस पद्धति में ध्वनियों और शब्दों का सही उच्चारण, वाक्य साँचों पर पाठ, वार्तालाप आदि को रिकार्डों के माध्यम से सिखाया जाता है। इनमें वक्ता का उच्चारण शुद्ध और भाषा की प्रकृति के अनुरूप होना अनिवार्य है। इसका एक कारण यह भी है कि इसमें विद्यार्थी सिर्फ सुनने का काम करता है। उसकी समस्याओं का समाधान करने अथवा उसकी गलतियों को सुधारने वाला कोई नहीं होता। लिंग्वाफोन पद्धति से हिन्दी सहित विश्व की अनेक भाषाएँ पढ़ाई जाती हैं।

लिंग्वाफोन की पद्धति पर ही लिंग्वारिकॉर्ड भी तैयार किए गए हैं। उन्हें विशेष रूप से अहिंदी भाषी भारतीयों और विदेशियों के लिए तैयार किया गया है। ये रिकॉर्ड ध्वनि और उच्चारण, आधारभूत व्याकरणिक नमूनों तथा विभिन्न परिस्थितियों और वातावरण संबंधी वार्तालाप से संबन्धित है। लिंग्वारिकॉर्ड को पाठ्य-सामग्री का पूरक भी कहा जा सकता है।

2.टेपरिकॉर्डर तथा रिकॉर्ड प्लेयर : यह शिक्षण का सर्वसुलभ साधन है। उच्चारण, प्रयोग तथा साहित्य-पाठों में इसका उपयोग सफलतापूर्वक किया जा सकता है। इनमें किसी आदर्श वक्ता के भाषण, शुद्ध उच्चारण करने वाले लोगों की बातचीत, ध्वनियों एवं शब्दों के शुद्ध उच्चारण को रिकॉर्ड कर लिया जाता है और फिर उनको रिकॉर्ड प्लेयर पर सुनकर श्रवण-कौशल का अभ्यास किया जा सकता है। अन्य सहायक सामग्री के समान इसका महत्त्व भी अन्य भाषा-शिक्षण में बहुत अधिक है क्योंकि अहिंदी भाषियों को हिन्दी की विशिष्ट ध्वनियों को सुनने, समझने और इस कारण बोलने में कठिनाई होती है। इसका एक लाभ यह भी हो सकता है कि किसी भी वार्ता, बातचीत, भाषण आदि को रिकॉर्ड करके बाद में सुना जाये और फिर उसका विश्लेषण कर अशुद्धियों को पहचानकर उनसे बचने का प्रयास किया जाए।

3.रेडियो : रेडियो जनसंचार का एस माध्यम है जिससे एक बार में हजारों-लाखों विद्यार्थी भी लाभ उठा सकते हैं, परंतु इसमें एक ही बात को बार-बार प्रसारित नहीं किया जा सकता। भाषा एवं संस्कृति के शिक्षण में जन-संपर्क के साधन रूप में इसका प्रयोग किया जाता है। भाषाई संरचना तथा प्रयोग, लेखकों तथासाहित्यकारीं के जीवन परिचय आदि का ज्ञान रेडियो के माध्यम से सहज ही दिया जा सकता है। रेडियो से श्रवण-कौशल बढ़ने के साथ-साथ विद्यार्थी की शब्दावली समृद्ध होती है एवं भाषा-व्यवस्था संबंधी ज्ञान में भी वृद्धि होती है।"[8]

दृश्य-श्रव्य शिक्षण सामग्री : वे साधन जिनमें देखने-सुनने की प्रक्रिया एक साथ चलती है। प्रमुख दृश्य-श्रव्य सामग्रियाँ हैं : चलचित्र और दूरदर्शन।

1.चलचित्र : चलचित्र को प्रायः मनोरंजन का साधन माना जाता है, परंतु यह भाषा शिक्षण की दृष्टि से भी उपयोगी हो सकता है। चलते-फिरते बड़े चित्रों और स्वाभाविक अभिनय के कारण चलचित्र दर्शक/विद्यार्थी पर स्थायी छाप छोडते हैं। श्रवण और भाषण कौशल

के साथ-साथ इनसे भाषा-संरचना, प्रयोग और वार्तालाप-कौशल के विकास में भी सहायता मिलती है। इनसे विद्यार्थी के ज्ञान में अभिवृद्धि होती है और अभिव्यक्ति में स्पष्टता आती है। प्रदेश विशेष के रीति-रिवाजों, जीवन-शैली, आदर्शों और जीवन मूल्यों को चलचित्र के माध्यम से सहज ही संप्रेषित किया जा सकता है। बाल-उपयोगी फिल्में विषयवस्तु को आसानी से बच्चों तक पहुँचाती हैं। डॉ॰ मुकेश अग्रवाल ने 'हिन्दी भाषा शिक्षण' में लिखा है कि -

"भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर के तत्त्वाधान में 'देवनागरी लिपि' पर बनाई गई फिल्म ने लिपि शिक्षण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ऐतिहासिक-भौगोलिक महत्त्व के स्थानों पर कुछ फिल्में बनी हैं। यद्यपि भारत में भाषा-शिक्षण की दृष्टि से फिल्मों के महत्त्व को नहीं पहचाना गया है, परंतु यूरोप में इस माध्यम का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।"[9]

2.दूरदर्शन (टी॰वी॰) : दूरदर्शन की भी भाषा-शिक्षण, विशेषतः अन्य भाषा-शिक्षण में महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। दूरदर्शन का उपयोग दो प्रकार से किया जा सकता है। पहला, सरकारी माध्यम के रूप में, जहाँ समय-समय पर शैक्षिक कार्यक्रम दूरदर्शन पर दिखाए जाते हैं। जैसे, प्रौढ़ों को साक्षर बनाने के लिए पाठ नियमित अंतराल के साथ दूरदर्शन पर आता रहा है। इसमें गीतों, कविताओं, कहानियों आदि के माध्यम से ध्वनि, शब्द और लिपि का अध्यापन किया जाता है। दर्शनीय स्थलों, विभिन्न देशों-प्रदेशों की सांस्कृतिक विशेषताओं के नियमित कार्यक्रम भी शिक्षण का अंग बन जाते हैं। दूसरे प्रकार के दूरदर्शन कार्यक्रम क्लोजड़ सर्किट टी॰वी के माध्यम से विद्यार्थी तक पहुँचाए जा सकते हैं। इनमें कक्षा की आवश्यकतानुसार निर्मित फिल्मों को दूरदर्शन पर दिखाया जाता है। परंतु इसका अधिक लाभ तब है, जब एक पाठ एक ही समय में एक से अधिक कक्षाओं में पढ़ाया जाना हो। दूरदर्शन पर पाठ-संबंधी फिल्में दिखाने में यह लाभ रहता है कि अध्यापक का काफी समय बच जाता है। फिल्म बनाना निश्चय ही श्रमसाध्य है

परंतु सम्पादन के बाद दूरदर्शन पर दिखाई गई फिल्म गहरा प्रभाव विद्यार्थी के चित्त पर अंकित करती है।

प्रौद्योगिकी शिक्षण सामग्री : हिन्दी भाषा-शिक्षण में परंपरागत शिक्षण सामग्रियों के साथ तकनीकी शिक्षण सामग्रियों का भी प्रयोग होने लगा है। विज्ञान ने अनेक प्रकार की ऐसी मशीनों और तकनीकों का आविष्कार किया है जिनसे विद्यार्थी की रुचि विषय में बढ़ती है। कम्प्यूटर को तकनीकी शिक्षण सामग्री के अंतर्गत लिया जा सकता है:

कम्प्यूटर : यह शिक्षण की नवीन तकनीक है। आज जीवन के हर क्षेत्र में कम्प्यूटर का उपयोग किया जा रहा है। भाषा-शिक्षण इसका अपवाद नहीं है। कम्प्यूटर स्वयं शिक्षक का काम करता है। इसमें अध्यापक विद्यार्थी के पास नहीं रहता वरन् पाठों को अनुस्तरित और नियोजित कर कम्प्यूटर में प्रोग्राम कर देता है। इसके आधार पर कम्प्यूटर स्वयं उस प्रोग्राम को शिक्षार्थी के लिए उपलब्ध कराता चलता है।

2.5.2 शिक्षण सामग्री का मूल्यांकन :

भाषा-शिक्षण का उद्देश्य है विद्यार्थी का भाषाई कौशलों पर पूर्ण अधिकार। इसका तात्पर्य है कि वह विभिन्न विषयों को उचित रूप से हृदयंगम कर अपने विचारों को प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त कर सके।

शिक्षण सामग्री से तात्पर्य है, शिक्षण के संदर्भ में आधार एवं सहायक सामग्री। अध्यापक किसी सामग्री, यथा, पाठ्यपुस्तक को शिक्षण के आधार रूप में ग्रहण करता है, इसके पश्चात पाठ को रोचक एवं प्रभावी बनाने के लिए अन्य अनेक प्रकार की सामग्री - यथार्थवास्तु, चित्र आदि का उपयोग करता है। इस सामग्री के सम्यक उपयोग से ही अध्यापक भाषा-शिक्षण के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल हो सकता है।

शिक्षण सामग्री के मूल्यांकन की आवश्यकता :

विद्यार्थी शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति में तभी सफल हो सकता है जब शिक्षण सामग्री उन उद्देश्यों के अनुरूप हो। वस्तुतः शिक्षण सामाग्री के मूल्यांकन की आवश्यकता का कारण आज के दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली में खोजा जा सकता है। उदाहरणार्थ, अहिंदी भाषी क्षेत्रों असम, मिजोरम, नागालैंड, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश आदि में हिन्दी शिक्षण सामग्री अत्यल्प है और जहाँ है भी वहाँ भी इसकी स्थिति संतोषजनक नहीं कहीं जा सकती। आज जो भी हिन्दी शिक्षण सामग्री उपलब्ध है उसमें लक्ष्मी नारायण शर्मा के शब्दों में

-

“1.भाषा-शिक्षण के विभिन्न पक्षों की अवहेलना स्पष्ट झलकती है।

2.शिक्षा विभाग द्वारा एक निश्चित पाठ्यक्रम तथा उसके द्वारा या व्यक्तिगत प्रयास द्वारा निर्मित पाठ्य पुस्तकों की परिधि में ही शिक्षक को चक्कर लगाने पड़ते हैं।

3.प्रायः स्कूलों के लिए पाठ्यपुस्तक-निर्माता विश्वविद्यालय या महाविद्यालयों के जो अध्यापक होते हैं उनमें से अधिकांश शिक्षाशास्त्र तथा शिक्षण सामग्री-निर्माण विज्ञान से अनभिज्ञ होते हैं।

4.प्रायः पाठ्यपुस्तक-निर्माता तथा पाठ्यक्रम-समिति के सदस्य प्रकाशकों के हाथ की कठपुतली होते हैं।

5.उपलब्ध सामग्री में विषयवस्तु की क्रमहीनता, छात्र-अननुकूलता, अनुपयुक्त भाषा-शैली, आदर्शहीनता, अव्यावहारिकता आदि अवगुण होते हैं।

6.आधार पाठ्यपुस्तकों तथा अन्य संबन्धित अभ्यासमालाओं, संदर्भ पुस्तकों के निर्माताओं में कोई तालमेल नहीं होता।

7.अध्यापन-दर्शिकाओं का तो लगभग सर्वत्र अभाव ही है।

8.उपलब्ध पाठ्य सामग्री मात्रा, गुण की दृष्टि से अधःस्तरीय होते हुए भी अधिक कीमतीवाली होती है।"[10]

शिक्षण सामग्री का चयन और निर्माण :

डॉ॰ मुकेश अग्रवाल के अनुसार शिक्षण सामग्री का चयन या निर्माण करते समय निम्न बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए :

"1.सामग्री विद्यार्थी की आवश्यकता, परिवेश तथा भाषा-शिक्षण के उद्देश्यों के अनुरूप हो।

2.विद्यार्थी की श्रवण शक्ति का विकास हो सके। वह वार्तालाप, कविता, कहानी, समाचार आदि को सुनकर भली प्रकार समझ सके।

3.भाषाई तत्वों - उच्चारण-कठिनाई, शब्द, लिपि; सांस्कृतिक तत्व आदि को अनुस्तरित रूप में प्रस्तुत किया जाए।

4.विद्यार्थी की भाषण-क्षमता का विकास हो सके। वह बालाघाट, अनुतान आदि का उचित प्रयोग कर सके तथा संधि, समास, मुहावरे, लोकोक्तियों आदि को ठीक प्रकार से समझकर उनका उपयोग कर सके।

5.विद्यार्थी की वाचन शक्ति का विकास हो सके। कविता, कहानी, लेख, निबंध, आत्मकथा, उपन्यास आदि को उचित रूप में पढ़ सके। इस क्षमता का निरंतर विकास भी आवश्यक है। पहले विद्यार्थी मोटे टाइप की सामग्री का अध्ययन करे परंतु बाद में तीव्र गति से लिखी गई सामग्री, फोटोस्टेट आदि को भी पढ़कर समझ सके।

6.विद्यार्थी की अभिव्यक्ति क्षमता का पूर्ण विकास हो सके। वह अपनी अनुभूतियों और विचारों को पूर्ण क्षमता के साथ अभिव्यक्त कर सके। मुहावरे, लोकोक्तियों, सूक्तियों आदि का उचित उपयोग कर सके। उसकी शब्द, रूप तथा वाक्य-संरचना शुद्ध हो। विचारों

में क्रमबद्धता हो। दूसरों के विचारों को पढ़कर अपने शब्दों में व्यक्त कर सके। उसकी कल्पना-शक्ति विकसित हो तथा भावों को उचित आरोह-अवरोह के साथ प्रस्तुत कर सके।

7.अन्य व्यक्ति के भाषण, वाचन तथा लेखन में उच्चारण, शब्द-प्रयोग, वाक्य-संरचना, वर्तनी आदि की अशुद्धियों को पहचान कर उस ओर इंगित कर सके।

8.बातचीत अथवा लेखन के प्रसंग में आवश्यकतानुसार समान अथवा असमान भावों के उदाहरण प्रस्तुत कर सके।

9.लेखन अभिव्यक्ति-क्षमता का विकास हो सके। वाक्य-संरचना आदि के साथ ही शुद्ध वर्तनी, वीयाम-चिह्नों की उपयुक्तता, विचारानुसार विषय को अनुच्छेदबद्ध करना आदि क्षमताओं का विकास हो सके।

10.पाठ्यक्रम सहचारी (co-curricular) गतिविधियों में भाग ले सके। पाठ्य पुस्तकों से भिन्न पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ना, स्कूल-कॉलेज की पत्रिकाओं में रुचि लेना, श्रेष्ठ पुस्तकों का संकलन करना आदि के प्रति रुचि जागृत हो सके तथा राष्ट्रप्रेम, विश्वबंधुत्व, प्राणिमात्र के प्रति सहानुभूति, संवेदनशीलता आदि भावों का विकास को सके।

अन्य भाषा शिक्षण से संबन्धित सामाग्री का निर्माण करते समय मातृभाषा और लक्ष्यभाषा (भा1 और भा2) के विभिन्न स्तरों पर साम्य-वैषम्य का विश्लेषण भी आवश्यक है। यह भा1 और भा2 के निम्न स्तरों पर हो सकता है -

1.स्वर, व्यंजन तथा अक्षर के स्तर पर।

2.रूप, रूप-रचना, पदबंध, उपवाक्य तथा वाक्य-रचना के स्तर पर।

3.आधारभूत शब्दावली, शब्दावली की रूपात्मक संरचना, वितरण-व्यवस्था तथा अर्थ के स्तर पर।

4.वर्णिम, वर्तनी तथा वाचनव्यवस्था के स्तर पर।

5.रीति-रिवाज, सामाजिक, प्राकृतिक, सांस्कृतिक वातावरण आदि के स्तर पर ।"[11]

अतः शिक्षण सामग्री निश्चित करते समय मुख्य रूप से निम्न तथ्यों का ध्यान देना आवश्यक हैं :

1.विद्यार्थी की प्रेरणा

2.विद्यार्थी की वय

3.विद्यार्थी का मानसिक स्तर

4.विद्यार्थी का अनुभव

5.विद्यार्थी की रुचि

6.विद्यार्थी का परिवेश

2.6भाषा कौशल

भाषा-शिक्षण का मूल उद्देश्य है - भाषाई-कौशलों का विकास। भाषाई कौशल के विकास से तात्पर्य है विद्यार्थी में यह क्षमता उत्पन्न करना कि वह भाषा के माध्यम से विशेष भाषाई समाज में प्रभावी रूप से विचार-विनिमय कर सके। विचार-विनिमय की इस प्रक्रिया में मुख्य भूमिका निभाते हैं - वक्ता और श्रोता। वक्ता जो बात कहता है, श्रोता उसे ठीक रूप में समझकर वक्ता की भूमिका निभाते हुए उसका उत्तर देता है।

वक्ता श्रोता

श्रोता वक्ता

भाषाई कौशलों के प्रकार :

विद्यार्थी में दो कौशलों का विकास अत्यावश्यक है - श्रवण-कौशल और भाषण-कौशल। इसी भाषा को स्थायित्व देने के लिए लिपि-चिह्नों का प्रयोग किया जाता है। विद्यार्थी के लिए यह भी आवश्यक है कि वह लिपि-चिह्नों को समझकर वाचन कर सके और आवश्यक पड़ने पर स्वयं भी लिख सके। अतः उसमें वाचन-कौशल और लेखन-कौशल का विकास भी भाषा-शिक्षण के माध्यम से किया जाना चाहिए। इस प्रकार भाषाई कौशल चार होते हैं - सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखना। इन्हीं से संबन्धित कौशलों के लिए क्रमशः श्रवण-कौशल, भाषण-कौशल, वाचन-कौशल और लेखन-कौशल नाम का प्रयोग किया जाता है। इन कौशलों को दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है - प्रमुख कौशल और गौण कौशल।

प्रमुख कौशल : भाषा का वास्तविक रूप उसका उच्चरित रूप ही होता है, इसलिए इनसे संबद्ध कौशल ही प्रमुख कौशल कहे जाते हैं। औपचारिक शिक्षा से अपरिचित व्यक्ति भी भाषा की ध्वनि-व्यवस्था के प्रयोग में समर्थ होता है। भाषाविज्ञान भाषा की मौखिक अभिव्यक्ति को ही महत्त्वपूर्ण मानता है। मौखिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से भाषाई कौशल हैं :

क.सुनना (श्रवण-कौशल)

ख.बोलना (भाषण-कौशल)

गौण कौशल : भाषा के उद्देश्य की पूर्ति तो मौखिक अभिव्यक्ति से ही हो जाती है, परंतु आज अनेकानेक कारणों से भाषा को स्थायित्व देने की आवश्यकता पड़ती है जो लिपि-चिह्नों के माध्यम से ही संभव है। भाषाविज्ञान में इन कौशलों को गौण स्थान दिया गया है। लिपि-चिह्नों से संबन्धित कौशल भी दो हैं :

क.पढ़ना (वाचन-कौशल)

ख.लिखना (लेखन-कौशल)

यद्यपि भाषा के स्तर पर चारों कौशल परस्पर सम्बद्ध हैं तथापि सम्यक विश्लेषण हेतु इनका पृथक-पृथक विवेचन आवश्यक है।

2.6.1श्रवण-कौशल

चारों कौशलों में सर्वप्रमुख है 'सुनना'। भाषा सुनकर ही सीखी जाती है। हम भाषा को सुनते हैं, समझते हैं और फिर बोलते हैं। जो सुन नहीं पाते, उनके लिए भाषा सीखना अत्यधिक कठिन होता है। इसीलिए श्रवण कौशल को विशेष महत्त्व दिया जाता है। "श्रवण शब्द 'श्रु' धातु से बना है। 'श्रु' का अर्थ सुनने की क्रिया, ध्यानपूर्वक सुनना, मौखिक संवाद करना आदि को प्रकट करता है। श्रवण का आशय हुआ - किसी कथन को ध्यानपूर्वक सुनना।"12 अर्थात् श्रवण-कौशल से तात्पर्य है भाषा की ध्वनियों को सुनना, समझना और स्मरण रखना। इस दृष्टि से सर्वाधिक आवश्यक बात है कि विद्यार्थी भाषा की ध्वनियों को सुनकर उनमें अंतर कर सकें। प्रत्येक भाषा की विशिष्ट ध्वनि-संरचना होती है, उनमें परस्पर मिलती-जुलती ध्वनियाँ भी हो सकती हैं। उदाहरणार्थ, हिन्दी में क-ख, ग-घ, ट-ठ, ड-ढ आदि में अल्पप्राण-महाप्राण का ही अंतर है। विद्यार्थी में इतना श्रवण-कौशल विकसित हो जाना चाहिए कि वह सुनते समय इनमें स्पष्ट अंतर कर सके। ध्वनियों में अंतर करने के साथ ही यह भी आवश्यक है कि विद्यार्थी सुनते समय भाषा के अनुतान, बालाघाट, संगम आदि पर भी ध्यान दे क्योंकि यदि वह इनका ठीक से श्रवण करेगा तभी भाषण में इन्हें ठीक से ला पाएगा।

श्रवण-कौशल विकास की सामग्री एवं प्रक्रिया : प्रायः श्रवण को एक सरल एवं निष्क्रिय स्थिति माना जाता है, परंतु तथ्य इसके विपरीत है। श्रवण एक सजग एवं सक्रिय स्थिति है। भाषा-शिक्षण में श्रवण-कौशल के विकास पर समुचित ध्यान देना आवश्यक है। निरंतर अभ्यास और अनुभव से ही इस कौशल का विकास किया जा सकता है। भाषा को समुचित

परिवेश में सुनने का जितना अधिक अवसर मिलता है, श्रवण कौशल उतना ही विकसित होता है। ध्वनियों और ध्वनि-संयोगों को पहचानने और याद रखने के लिए आवश्यक है कि उनके श्रवण का व्यवस्थित अभ्यास कराया जाए। यह अभ्यास कई प्रकार से कराया जा सकता है।

1.सामान्य कौशल : श्रवण कौशल विकसित करने की सबसे सहज और प्रमुख विधि है - सामान्य श्रवण। सामान्य श्रवण में विद्यार्थी को बिना किसी प्रकार का निर्देश दिए ऐसे परिवेश में रखा जाता है जिससे वह भाषा की ध्वनियों, शब्दों, वाक्यों को निरंतर सुनता है और धीरे-धीरे उन्हें पहचानना सीख लेता है।

2.चयनित श्रवण : चयनित श्रवण की आवश्यकता प्रायः अन्य भाषा शिक्षण के संदर्भ में पड़ती है। इसका तात्पर्य है - मातृभाषा की ध्वनियों से साम्य-वैषम्य के आधार पर लक्षयभाषा की ध्वनियों का वर्गीकरण कर उनका श्रवण-अभ्यास।

3.अनुतान और बालाघात अभिरचना-अभ्यास : प्रत्येक भाषा का अपना विशिष्ट अनुतान और बालाघात ढाँचा होता है, अतः भाषा-शिक्षण में अध्यापक के लिए आवश्यक है कि वह भिन्न-भिन्न अनुतानों का व्यवस्थित अभ्यास कराए।

4.व्याकरणिक रूपों का श्रवण-अभ्यास : भाषा में प्रयुक्त होनेवाले वाक्यों में जिन रूपों का प्रयोग होता है, वे प्रायः शब्द में परिवर्तन के आधार पर बनते हैं। यह परिवर्तन ही मातृभाषा और अन्य भाषा में भिन्न रूप से होता है, अतः विद्यार्थी के लिएँ शब्द रूपों का श्रवण-अभ्यास भी आवश्यक है। एक ही शब्द, लिंग, वचन, काल बादल जाने पर भिन्न रूप धारण कर सकता है, और तदनुसार उसके अर्थ में अंतर आ सकता है। मातृभाषा शिक्षण में विद्याठी को इसका ज्ञान सामान्य श्रवण से हो जाता है परंतु अन्य भाषा-शिक्षण में इसका ज्ञान श्रवण अभ्यास से ही होता है। इसके लिए विद्यार्थी को

व्याकरण के नियम न बताकर वाक्य अभिरचना-अभ्यास करना अधिक उपयुक्त रहता है।

श्रवण-कौशल तभी पूर्ण होता है जब विद्यार्थी शब्द, वाक्य आदि के अर्थ को समझे। इसके लिए अध्यापक को चाहिए कि प्रारम्भ में वह विद्यार्थी के परिचित शब्दकोश का आश्रय ले और चित्र, टेप, स्लाइड्स आदि सहायक शिक्षण सामग्री की सहायता से अर्थ-सम्प्रेषण का प्रयास करे। चित्र एक भी हो सकता है और पूरी चित्र शृंखला भी। सहायक शिक्षण सामग्री के प्रयोग से श्रवण भी रोचक बन जाता है। विद्यार्थी ने कितना अर्थ ग्रहण किया, इसके लिए उससे छोटे-छोटे प्रश्न भी पूछे जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त टेप और लिखित सामग्री का साथ-साथ प्रयोग करके भी श्रवण-अभ्यास कराया जा सकता है।

2.6.2भाषण कौशल

सम्प्रेषण का सबसे प्रभावशाली साधन है भाषा। भाषण-कौशल से यहाँ तात्पर्य है बोलने का कौशल। अन्य भाषा-शिक्षण की दृष्टि से तो भाषण-कौशल को ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कौशल माना जाता है। इससे भावों और विचारों का सहज प्रकटीकरण तो संभव होता है ही, अन्य भाषाई कौशलों के विकास में भी सहायता मिलती है। भाषण-कौशल का तात्पर्य है विद्यार्थी में ऐसी क्षमता उत्पन्न करना कि वह अपने भावों और विचारों को सहज, सपष्ट और प्रभावशाली रूप में इस प्रकार व्यक्त करे कि श्रोता उसे यथातथ्य रूप में ग्रहण कर प्रभावित हो सके। मातृभाषा-शिक्षण में विद्यार्थी में भाषण-कौशल स्वयमेव आ जाता है परंतु अन्य भाषा-शिक्षण में इसे प्रयासपूर्वक प्राप्त करना पड़ता है। इसके लिए अध्यापक को विशेष रूप से पाठों का निर्माण करना पड़ता है।

याज्ञवल्क्य ने कहा है "जिसकी प्रकृति अच्छी है, जिसके दाँत और ओष्ठ अच्छे हैं, वार्तालाप में प्रगल्भ तथा विनीत है, वही व्यक्ति वर्णों का सटीक उच्चारण कर सकता है।"[13]

पाणिनी कहते हैं "शब्दोच्चारण के पूर्व बुद्धि के साथ मिलकर आत्मा पहले अर्थज्ञान प्राप्त करती है, तब मन बोलने की इच्छा से प्रेरणा प्राप्त करता है।"[14]

भाषण-कौशल में ध्वनियों के उच्चारण, अनुतान, बलाघाट, संगम आदि की आदत अन्य भाषा की प्रकृति के अनुसार डालनी पड़ती है। भाषण-कौशल में पारंगत विद्यार्थी अपनी व्यक्तिगत और सामाजिक आवश्यकताओं तथा दायित्वों को पूर्ण कर सकता है। वह अन्य भाषा-भाषी समाज के साथ विचार-विमर्श में सक्षम हो जाता है, जिससे उसमें आत्मविश्वास आता है। अन्य भाषा-भाषियों से विचार-विमर्श के कारण उसका सामाजिक स्तर उन्नत होता है, चिंतन का क्षेत्र विस्तृत होता है। विद्यार्थी उस समाज की सांस्कृतिक-समृद्धि का परिचय प्राप्त करता है। व्यवसाय के क्षेत्र में भी इसका पर्याप्त लाभ मिलता है। अनेकानेक व्यक्ति तो इसी कारण अन्य भाषा अधिगम की ओर अग्रसर होते हैं जिससे वे सम्मानपूर्ण ढंग से जीविकोपार्जन कर सकें।

भाषण-कौशल में भाषा के सभी उपांगों पर विद्यार्थी का अधिकार है, इसका प्रयास किया जाता है। वह भाषा की ध्वनि-व्यवस्था, शब्दभंडार, रूप-रचना, पदबंध, उपवाक्य, वाक्य आदि सभी स्तरों पर समान अधिकार प्राप्त करे।

भाषण-कौशल विकास की सामग्री एवं प्रक्रिया :

भाषण की प्रक्रिया के दो मुख्य अंग हैं - उच्चारण और मौखिक अभिव्यक्ति। उच्चारण में मुख्य बल ध्वनियों के उच्चारण, अनुतान, बालाघात और संगम पर रहता है। इसका तात्पर्य है कि विद्यार्थी अन्य भाषा की ध्वनियों, पदों, वाक्यों को उस भाषा की प्रकृति

के अनुसार उच्चरित करना सीख सकें। अतः अन्य भाषा की दृष्टि से उच्चारण-शिक्षण में ध्वनि-शिक्षण को विशेष महत्त्व दिया जाता है।

1.उच्चारण-शिक्षण : उच्चारण-शिक्षण से तात्पर्य है ध्वनियों और ध्वनि-संयोगों का शिक्षण। विद्यार्थी के लिए आवश्यक है कि भाषा की ध्वनियों और उन ध्वनियों के अंतर को स्पष्ट रूप से पहचान सके। उ-ऊ, इ-ई, क-ख, क-ग जैसी ध्वनियों का अंतर उसके सम्मुख स्पष्ट हो। अन्य भाषा-शिक्षण में आधारभाषा और लक्ष्य भाषा की ध्वनियों का अंतर भी उसके सम्मुख पूर्णतः स्पष्ट हो जाए और लक्ष्य भाषा की ध्वनि-व्यवस्था का वह मातृभाषा की प्रकृति के अनुसार उच्चारण कर सके। अन्य भाषा में कुछ नवीन ध्वनियाँ होती हैं, जिन्हें सीखने में विद्यार्थी विशेष कठिनाई अनुभव करता है। इन समस्यापूर्ण एवं नवीन ध्वनियों का उच्चारण सिखाने के लिए कई विधियाँ प्रयोग में लाई जाती है।

क.अनुकरण-अभ्यास : उच्चारण शिक्षण की सर्वप्रथम विधि अनुकरण अभ्यास है। इस विधि से मातृभाषा शिक्षण में कोई कठिनाई नहीं होती, विद्यार्थी स्वयं, सर्वत्र अनुकरण-अभ्यास करता रहता है। परंतु अन्य भाषा-शिक्षण में अध्यापक लक्ष्यभाषा के स्वनिमों और संस्वनों की सूची बनाकर मातृभाषा की ध्वनियों से उसकी तुलना के आधार पर शिक्षण की दृष्टि से सरल-सामान्य-कठिन की दृष्टि से ध्वनियों का अनुस्तरण कर लेता है। यह वर्गीकरण मातृभाषा के समान ध्वनियों, समस्यापूर्ण ध्वनियों और नवीन ध्वनियों के आधार पर हो सकता है, फिर शिक्षण-बिन्दुओं को अनुस्तरित कर सरल से जटिल क्रम में उनका अभ्यास कराया जाता है। अध्यापक स्वयं अथवा टेपांकित पाठ द्वारा श्रवण के बाद विद्यार्थी से उन ध्वनियों के अनुकरण का अभ्यास कराता है।

ख.अनुतान अभ्यास : बोलते समय प्रायः हमारे वाक्य आदि से अंत तक एक लहज़े में न होकर उतार-चढ़ाव युक्त होते हैं। यह उतार-चढ़ाव ही अनुतान है। अनुतान-शिक्षा के

लिए आवश्यक है कि अध्यापक अनुतान-अभिरचनाओं की सूची तैयार करे। इस सूची को सरल और सामान्य अभिरचनाओं के रूप में अनुस्तरित कर इसी क्रम में विद्यार्थी से अभ्यास कराना चाहिए। प्रारम्भ में एक बार में एक ही अनुतान-अभिरचना सिखानी चाहिए। अनुतान-अभिरचना-अभ्यास के समय विद्यार्थी का शब्द-भंडार समृद्ध करना, उसे नई रूप-रचना सिखाना आदि का मोह न रखकर सरल, सार्थक एवं यथार्थ अनुतान-अभिरचना का ही अभ्यास कराना चाहिए।

ग.बलाघात-अभ्यास : बलाघात से तात्पर्य है मौखिक अभिव्यक्ति अथवा उच्चारण के समय शब्द के किसी अंश अथवा वाक्य आदि में किसी शब्द-विशेष आदि पर अपेक्षाकृत अधिक बल देना। प्रत्येक भाषा में बलाघात व्यवस्था भिन्न होती है और अन्य भाषा को सीखने का अर्थ है उस भाषा की बलाघात व्यवस्था का मातृभाषा-भाषी के समान प्रयोग। मातृभाषा शिक्षण में यह समस्या बहुत कम आती है। बालाघात स्वनिमिक भी होता है। इसमें परिवर्तन से शब्द अथवा वाक्य के अर्थ में अंतर आ जाता है -

आज कम-से-कम बोलूँगा।

आज कम-से-कम बोलूँगा।

अतः विद्यार्थी के लिए अन्य भाषा की बलाघात व्यवस्था का शिक्षण एवं अभ्यास आवश्यक है।

घ.संगम अभ्यास : संगम को विवृत्ति अथवा संहिता भी कहा जाता है। संगम समय की दृष्टि से मौन-कला या विराम-काला है। वाक्य के वास्तविक अर्थ ग्रहण के लिए यह भी आवश्यक है कि उसमें उचित स्थान पर विराम दिया जाए। स्वरों, व्यंजनों और स्वराघातों के बीच सीमा-रेखाएँ स्पष्ट हों। संगम-शिक्षण की भी प्रमुख विधि अभ्यास ही है। अध्यापक को भाषा से विविध उदाहरण खोजकर उनका अभ्यास कराना चाहिए। इन्हें विद्यार्थी के स्तर और परिवेश के अनुसार चुना जाना चाहिए।

2.मौखिक अभिव्यक्ति : उच्चारण के समान ही मौखिक अभिव्यक्ति से तात्पर्य है - लक्ष्य भाषा के माध्यम से विचारों तथा भावों की धारा-प्रवाह रूप से प्रभावी अभिव्यक्ति। इस दृष्टि से इसमें ध्वनि, अनुतान, बलाघात आदि के साथ-साथ शब्द, रूप तथा उनकी व्याकरणिक व्यवस्था का भी पर्याप्त महत्त्व है। मौखिक अभिव्यक्ति शिक्षण की प्रमुख विधियाँ निम्नलिखित हैं :

क.अभिरचना-अभ्यास : इसका तात्पर्य है भाषा की विभिन्न संरचनाओं का व्यवस्थित रूप से अभ्यास करना।

ख.प्रश्नोत्तर अभ्यास : भाषा के माध्यम से विद्यार्थी अपने भावों को अभिव्यक्ति करता है और दूसरों की जिज्ञासाओं का समाधान करता है। इस दृष्टि से प्रश्नोत्तर अभ्यास भी उसके लिए आवश्यक है। प्रश्नोत्तर अभ्यास में भी सरल से कठिन की ओर चला जाता है। पहले सरल और बाद में जटिल प्रश्न पूछे जाते हैं।

ग.चित्र के माध्यम से अभ्यास : इसमें अध्यापक विद्यार्थी के सामने कोई चित्र अथवा चित्र-शृंखला प्रस्तुत करता है। विद्यार्थी को उस चित्र का वर्णन करना पड़ता है।

घ.वार्तालाप अभ्यास : वार्तालाप का अभ्यास करना भी भाषण कौशल का प्रमुख अंग है। प्राथमिक स्तर पर इसमें विद्यार्थी को कोई विषय, रूपरेखा, परिस्थिति आदि दे दी जाती है और विद्यार्थी उसके आधार पर वार्तालाप करता है, इसे नियंत्रित वार्तालाप कहा जाता है। दूसरे प्रकार का वार्तालाप स्वतंत्र वार्तालाप है जो अपेक्षाकृत उच्च स्तर पर किया जाता है। इसमें विद्यार्थी विषय, प्रसंग और भाषा का चयन स्वरूचि से करता है।

ङ.रचना-अभ्यास : विद्यार्थी को सिखाई गई वाक्य-संरचनाओं के आधार पर उससे मौखिक रचना का अभ्यास भी कराया जाता है। यह अभ्यास भी दो प्रकार का हो सकता है - नियंत्रित रचना अभ्यास और स्वतंत्र रचना अभ्यास। नियंत्रित रचना अभ्यास में चित्र के आधार पर कहानी-कथन, रूपरेखा के आधार पर कहानी-कथन अथवा परिचित संदर्भों पर

आधारित मौखिक रचना का अभ्यास कराया जाता है। चित्र, रूपरेखा आदि में विद्यार्थी के स्तर का ध्यान रखा जाना आवश्यक है। स्वतंत्र रचना में विद्यार्थी स्वतंत्र रूप से कहानी, संस्मरण अथवा किसी घटना के वर्णन आदि के माध्यम से मौखिक अभिव्यक्ति का अभ्यास करता है।

2.6.3वाचन-कौशल : भाषाई कौशलों में वाचन-कौशल का महत्त्वपूर्ण स्थान है। लगभग 60-70 वर्ष पूर्व तो इसे सर्वप्रमुख भाषाई कौशल माना जाता था। अब इस मान्यता में परिवर्तन हुआ है और श्रवण तथा भाषण प्रमुख भाषाई कौशल माने जाते हैं, परंतु इससे वाचन का महत्त्व कम नहीं हुआ है। आज भी शिक्षा-प्राप्ति का यह प्रमुख प्रमुख साधन है। वाचन का अर्थ है, भाषा में लिपि चिह्नों को पहचानकर उनके आधार पर विचार और भाव को ग्रहण करना। यह एक जटिल प्रक्रिया है क्योंकि मात्र लिपि-चिह्नों को देखकर वाचन कर सकना असंभव है। इसकी पूर्व तैयारी के रूप में विद्यार्थी को श्रवण और भाषण अभ्यास करना पड़ता है। जब विद्यार्थी उच्चारण करना सीख जाता है तब उसे लिपि-चिह्नों को पढ़ना सिखाया जाता है। परंतु लिपि-चिह्नों को समझना ही वाचन नहीं है, इसके लिए अर्थग्रहन / भावग्रहण आवश्यक है। इसी कारण किसी एक शब्द को पढ़ना 'वाचन' नहीं कहा जा सकता क्योंकि कोई भी अकेला शब्द निरर्थक होता है। इस दृष्टि से वाचन के दो आवश्यक अंग हैं - लिपि-चिह्नों की पहचान और अर्थ अथवा भावग्रहण।

लिपि-चिह्नों की पहचान में उनकी बनावट को पहचानना, लिपि-चिह्न और ध्वनि के संबंध तथा इनसे बननेवाले शब्दों, पदों और वाक्यों को पहचानने की योग्यता शामिल है। परंतु यह प्रक्रिया अर्थ ग्रहण के बिना अधूरी है। अर्थ-ग्रहण में शब्दों, वाक्यों, वाक्यांशों आदि को उनके संदर्भ में समझना आवश्यक है। इसमें शब्द-भंडार के विकास पर ध्यान देना भी अपेक्षित है।

ल्यूइस के अनुसार "वाचन एक साधन है जिसके माध्यम से बालक सम्पूर्ण मानव के द्वारा संचित ज्ञान राशि से परिचित होता है।"[15]

वाचन का महत्त्व असंदिग्ध है। वाचन साक्षरता का पर्याय है। इसके बिना समाज के किसी भी क्षेत्र में व्यक्ति का कार्य नहीं चल सकता। परंतु अन्य भाषा-शिक्षण की दृष्टि से इसका शैक्षिक महत्त्व अधिक है। लक्षयभाषा में उपलब्ध ज्ञान का अर्जन तथा उस संस्कृति का परिचय, इसके बिना कठिन हो जाता है। वाचन मनोरंजन का भी साधन है अवकाश के समय समाचार पत्र-पत्रिकाओं तथा पुस्तकों का वाचन विद्यार्थी को ज्ञान और मनोरंजन दोनों प्रदान करता है।

वाचन का उद्देश्य : वाचन का प्रमुख उद्देश्य ज्ञानार्जन है। विद्यार्थी लक्ष्यभाषा को सीख रहा है उसमें उपलब्ध ज्ञानपरक साहित्य का अध्ययन कर वह अपनी ज्ञान-पिपासा शांत कर सकता है। वाचन के माध्यम से ही वह अपने पड़ोस, अपने परिवेश से आगे बढ़कर देश-विदेश की जानकारी प्राप्त कर सकता है। अन्य देशों के समाज, भूगोल, संस्कृति, जीवन-शैली, परम्पराओं, रीति-रिवाजों से परिचित हो सकता है। इसी के माध्यम से वह अन्य भाषा के साहित्य - कविता, कहानी, संस्मरण आदि से परिचित होता है और नवीन लेखन-शैलियों का परिचय प्राप्त करता है।

वाचन-कौशल विकास की सामग्री एवं प्रक्रिया :

वाचन मुख्यतः तीन प्रकार का माना जाता है :

1.सस्वर वाचन : प्रारम्भ में विद्यार्थी से मात्रा रहित सरल शब्दों का वाचन कराना चाहिए। इसके लिए पहले अध्यापक एक शब्द को पढ़ता है और विद्यार्थी उसका अनुकरण करते हैं। यह अनुकरण पहले सामूहिक रूप से करना चाहिए। इसके बाद कक्षा को टोलियों में बाँटकर और फिर व्यक्तिगत रूप से अभ्यास कराना चाहिए। सरल शब्दों के बाद मात्रायुक्त शब्दों और फिर वाक्य-अभिरचनाओं का अभ्यास कराना चाहिए।

2.मौन वाचन : मौन वाचन की दृष्टि से विद्यार्थी को एकाग्रचित होकर पढ़ने का अभ्यास करना चाहिए। इसके लिए अध्यापक वाचन का समय निश्चित कर सकता है। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि विद्यार्थी बिना उच्चारण किए पाठ-बिन्दु के अर्थ को समझ सके। एक बार बोलने की आदत पड़ जाने पर उसे छोड़ना मुश्किल हो जाता है। पढ़ते-पढ़ते विद्यार्थी को विचारणा-शक्ति का प्रयोग करना चाहिए। अर्थ-ग्रहण और विचारणा-क्षमता के परीक्षण के लिए वाचन के पूर्व ही कुछ प्रश्न दिए जा सकते हैं। सामान्यतः मौन वाचन की गति सस्वर वाचन से दुगुनी होनी चाहिए। प्रारम्भिक स्तर पर यह गति सस्वर और मौन वाचन में समान होती है, परंतु धीरे-धीरे यह गति बढ़नी चाहिए।

3.गहन वाचन : मौन वाचन से अगले सोपान के रूप में गहन वाचन का अभ्यास कराया जाता है। गहन वाचन में विद्यार्थी तभी रुची लेते हैं जब शिक्षण सामग्री उनकी रुचि, आयु, स्तर आदि के अनुकूल हो। इस दृष्टि से संस्कृति, काला, नेता, कलाकार, फ़िल्में, संगीत, इमारतें आदि विषयों में से विद्यार्थी की योग्यतानुरूप विषय-चयन करना चाहिए। इसके अभ्यास के रूप में विद्यार्थी से पाठ्य सामग्री में से प्रमुख शब्दों, मुख्य वाक्यों आदि का चयन कराना चाहिए। छात्रों को उनकी सहमति-असहमति के बिन्दुओं को तार्किक रूप से स्पष्ट करने का निर्देश दिया जा सकता है। अपठित गद्यांश अथवा पद्यांश देकर उसका मूल भाव, शीर्षक आदि पूछे जा सकते हैं। गद्यांश का संक्षेपण कराया जा सकता है। उसे लिंग, वचन, काल आदि परिवर्तित कर सुनाने के लिए कहा जा सकता है। विद्यार्थी को घर पर सामग्री पढ़ने के लिए दी जा सकती है और फिर उससे संबन्धित प्रश्न पूछे जा सकते हैं। विद्यार्थी को पुस्तकालय में बैठने का अवसर देना चाहिए जिससे वह मौन रहते हुए विचारों को समझते हुए वाचन कर सके।

2.6.4लेखन-कौशल

लेखन-कौशल भाषाई कौशलों में अंतिम परंतु महत्त्वपूर्ण एवं जटिलतम कौशल है। लेखन-कौशल प्राप्ति के लिए पहले श्रवण, भाषण और उच्चारण कौशल आवश्यक हैं, परंतु बिना लेखन-कौशल के औपचारिक-शिक्षण को पूर्ण नहीं माना जा सकता। लेखन-कौशल का अर्थ है लिपि-चिह्नों के माध्यम से भावों और विचारों को व्यक्त करने का कौशल।

प्रत्येक भाषा की अपनी विशिष्ट लिपि होती है और उस लिपि में अपने भावों और विचारों का अंकन वही कर सकता है जिसे लिपि और भाषा दोनों में दक्षता प्राप्त हो। मात्र वर्णिमों का ज्ञान लेखन-कौशल के लिए अपर्याप्त है। वर्णिमों से शब्दों और वाक्यों की रचना तथा उसकी भावानुरूप अभिव्यक्ति ही लेखन कौशल की परिपूर्णता के परिचायक हैं। यदि विद्यार्थी अपने भाव या विचार लिपिबद्ध नहीं कर सकता तो भाषा-अधिगम की प्रक्रिया अधूरी रह जाएगी। लेखन-कौशल सिर्फ़ लिपि-व्यवस्था का ज्ञान नहीं है।

भाषा-शिक्षण में लेखन-कौशल का विशेष महत्त्व है। इसके माध्यम से विचारों, भावों, मान्यताओं, ज्ञान आदि को स्थायित्व मिलता है। एक पीढ़ी का ज्ञान भविष्य की पीढ़ियों तक उसी रूप में संक्रमित होता है। इससे भविष्य में शोध तथा प्रगति की धार को आगे बढ़ने में मदद मिलती है। लेखन-कौशल से विद्यार्थी के ज्ञान-क्षेत्र में विस्तार होता है। भिन्न देश, समाज अथवा नई-नई जानकारियों को विद्यार्थी लिखित सामग्री के माध्यम से ही प्राप्त कर पाता है। वह अपने भावों तथा विचारों को भी लिपिबद्ध करता है, जिसका उपयोग दूसरे लोग कर सकते हैं। इस प्रकार एक समाज के लोग लिखित सामग्री के माध्यम से अपने तथा स्न्य भाषा-भाषी समाज से विचार-विनिमय कर पाते हैं।

डॉ॰ रमनबिहारी लाल के अनुसार “अपने भावों और विचारों की विषयानुकूल भाषा शैली एवं तार्किक क्रम में कलात्मक ढंग से अभिव्यक्ति करने को भाषाभिव्यक्ति कहते हैं।”[16]

डॉ॰ रघुनाथ सफाया ने कहा है “विचारों को क्रमबद्ध करना, उन्हें शब्दों द्वारा व्यक्त करना, सँवारना तथा सजाना ही रचना है।”[17]

भाषा-शिक्षण में लेखन-कौशल का व्यावहारिक दृष्टि से भी पर्याप्त महत्त्व है। इसके माध्यम से व्यक्ति जीवन-यापन के लिए तैयार हो जाता हैं यदि व्यक्ति लेखन में दक्ष नहीं है तो अन्यभाषा भाषी तो फिर भी कुछ उद्देश्यों की पूर्ति में सफल हो सकता है परंतु मातृभाषा भाषी के लिए जीविका जुटाना भी कठिन हो सकता है। इसी प्रकार रचनात्मक लेखन का आधार भी लेखन ही है। यद्यपि कभी-कभी मौखिक रूप से भी साहित्य-सर्जन किया जाता है, परंतु वह देश और काल की सीमाओं में आबद्ध होता है। कबीर का साहित्य आज इसीलिए हमारे सम्मुख है क्योंकि उनके शिष्यों ने उसे लिपिबद्ध कर दिया था। लिपिबद्ध साहित्य देशकाल की सीमाओं का अतिक्रमण कर विश्व के देशों को एक-दूसरे के निकट आने का अवसर प्रदान करता है। भाषा और संस्कृति का सहज और शाश्वत संबंध है। लेखन के माध्यम से ही देशों की संस्कृति, पुष्पित, पल्लवित और और संवर्धित होती है। एक समाज की संस्कृति को प्रभावित करती है और उससे प्रभावित होती है। रेडियो और दूरदर्शन जैसे माध्यम जो हमें मौखिक प्रतीत होते हैं वे वास्तव में सरजनात्मक लेखन पर ही आधारित हैं। इस प्रकार लेखन-कौशल व्यक्ति-व्यक्ति, व्यक्ति-समाज, समाज-समाज को जोड़ने के बृहत्तर कार्य में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

लेखन-कौशल महज वर्णिमों का ज्ञान प्राप्त करना नहीं है। वर्णिमों की बनावट, उनका संयोग, वर्तनी, शब्द-संयोग, वाक्य-संरचना, शब्द-रूप चयन तथा भावानुरूप भाषा मिलकर लेखन-कौशल को परिपक्व करते हैं।

लेखन-कौशल विकास की सामग्री एवं प्रक्रिया :

लेखन एक जटिल प्रक्रिया है। लेखन में न सिर्फ़ वर्णिम की बनावट, उनका संयोग, शब्द-संयोग वरन् शब्द-चयन, वर्तनी और वाक्य-रचना के माध्यम से भाव तथा विचाराभिव्यक्ति का शिक्षण भी किया जाता है। इस दृष्टि से लेखन-शिक्षण के तीन स्तर हो सकते हैं :

1.वर्ण-रचना : वर्ण-रचना का शिक्षण लेखन सीखने के लिए आधारभूत आवश्यकता है। परंतु वर्ण-रचना पर्याप्त जटिल होती है और मातृभाषा की लिपि भी उसमें व्याघात उत्पन्न करती है। अतः अध्यापक के लिए आवश्यक है कि वह लक्ष्यभाषा के लिपि-चिह्नों की आवश्यकतानुसार विद्यार्थी के रेखाओं का अभ्यास कराए। इसके बाद वर्णों को समान रेखाओं वाले वर्गों में बाँटकर एक-एक वर्ग का अभ्यास करवाना चाहिए। इन वर्गों का अभ्यास कराते समय यह भी बताया जाना चाहिए कि पहले कौन-सी रेखा खींची जाए और उसके बाद कौन-सी। इसी प्रकार सरल से कठिन मात्राओं का अभ्यास भी कराया जा सकता है जब बच्चे को वाचन आरंभ कराया जाता है, तब 'देखो, बोलो और लिखो' पद्धति का आश्रय लिया जा सकता है। अध्यापक कोई वर्ण श्यामपट्ट पर लिखे, बच्चे उसका उच्चारण करें और उसे श्यामपट्ट अथवा अपनी अभ्यास पुस्तिकाओं में लिखे। इसके लिए श्यामपट्ट के स्थान पर मात्र अभ्यास पुस्तिकाओं का आश्रय भी लिया जा सकता है। इस पुस्तिका में ऊपर कुछ वर्ण लिखे हों और बच्चे उनका उच्चारण करते हुए अब्यास पुस्तिकाओं में लिखें।

2.वर्तनी : वर्तनी-शिक्षण की दृष्टि से रिक्तस्थान-पूर्ति का अभ्यास कराया जा सकता है। प्रारम्भिक स्तर पर विद्यार्थी से पुस्तक आदि से किसी अनुच्छेद की प्रतिलिपि करने के लिए कहा जा सकता है। कभी-कभी विद्यार्थी को पहले चित्र अथवा एक शब्द की वर्तनी दिखाकर अभ्यास के लिए दिए जानेवाले शब्द में एक रिक्त स्थान छोड़ दिया जाता है। फिर विद्यार्थी से उसकी पूर्ति के लिए कहा जाता है। रिक्त स्थान शब्द के आदि, मध्य अथवा अंत में कहीं भी हो सकता है। वर्तनी-शिक्षण की दृष्टि से सर्वाधिक प्राचीन साधन श्रुतलेख माना जाता है। श्रुतलेख के पूर्व विद्यार्थी ने श्रवण-कौशल प्राप्त कर लिया हो। उसे लक्ष्य भाषा की संरचना का ज्ञान हो तथा वह ध्वनि को पहचान कर तुरंत लिपिबद्ध कर सकता हो। प्रारम्भ में विद्यार्थी की परिचित सामग्री का उपयोग करना चाहिए और छोटे श्रुतलेख देने चाहिए। बाद में, इनकी लम्बाई और जटिलता बढ़ाई जा सकती है।

3.रचना-शिक्षण : भाषण-कौशल के समान लेखन-कौशल में विद्यार्थी को रचना का शिक्षण भी देना चाहिए। रचना दो प्रकार की हो सकती है-

क.नियंत्रित रचना : नियंत्रित रचना-शिक्षण के समय अध्यापक के सम्मुख निश्चित उद्देश्य होता है और वह उसी की सिद्धि के लिए यह अभ्यास कराता है। इसके माध्यम से विद्यार्थी की शब्द-भंडार और वाक्य-रचना पर पकड़ दृढ़ की जाती है। इसमें पहले वाक्य-पूर्ति तथा वाक्य-संशोधन का अभ्यास कराना चाहिए। इस दृष्टि से सर्वप्रथम रिक्त स्थान पूर्ति अभ्यास कराया जा सकता है। इसमें कभी बहुविकल्पीय पद्धति का उपयोग किया जाता है और कभी विद्यार्थी अपने ज्ञान के आधार पर वाक्य को पूर्ण करता है। इसके लिए संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, परसर्ग आदि सभी प्रकार के शब्दों के माध्यम से अभ्यास संभव है। ऐसे वाक्य भी अभ्यास के लिए देने चाहिए जिनमें शब्दों के रूप में परिवर्तन की आवश्यकता होती है।

ख.स्वतंत्र रचना : नियंत्रित रचना अभ्यास में जब विद्यार्थी को वाक्य-रचना का अभ्यास हो जाता है तो उसे विचारों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति का अभ्यास कराना भी आवश्यक है। स्वतंत्र रचना में विद्यार्थी कथ्य के साथ-साथ भाषाई अभिव्यक्ति का अभाव स्वाभाविक है। स्वतंत्र रचना भी कई प्रकार की हो सकती है :

i.पत्र-लेखन : भाषा-शिक्षण में पत्र-लेखन का विशेष स्थान है। अन्य स्थान से आनेवाले विद्यार्थी के मन में स्वाभाविक इच्छा होती है कि वह अपने दूरस्थ मित्रों, संबंधियों से लक्ष्यभाषा में पत्राचार करे, जिससे वे उसकी योग्यता से परिचित हो सकें। इस दृष्टि से विद्यार्थी को पहले अनौपचारिक पत्रों का अभ्यास कराना चाहिए। पत्र-प्रारूप देने के बाद उसे मित्रों आदि को पत्र लिखने के लिए प्रेरित करना चाहिए। पत्र-लेखन से विद्यार्थी अन्य स्थानों की संस्कृति, रीति-रिवाज आदि का परिचय प्राप्त कर अपने ज्ञान में भी वृद्धि करता है। बाद में, विद्यार्थी को औपचारिक पत्रों - संपादक, प्राचार्य आदि के नाम

पत्र-लेखन का अभ्यास भी कराना चाहिए। पत्र-लेखन से व्यवसाय, नौकरी आदि में भी लाभ मिलता है। कथ्य और अभिव्यक्ति दोनों दृष्टियों से आवश्यक है कि अध्यापक उन पत्रों की विशेषताओं और कमियों से विद्यार्थी को अवगत कराता रहे।

ii.निबंध-लेखन : निबंध-लेखन भी रचना अभ्यास का आवश्यक अंग है। प्रारम्भ में विद्यार्थी को उसके परिवेश से सम्बद्ध छोटे व सरल निबंध लिखने का अभ्यास कराना चाहिए। इसके लिए अध्यापक कई विधियाँ अपना सकता है। वह विद्यार्थियों से सम्बद्ध विषय पर मौखिक रूप से बोलने के लिए कह सकता है और उनमें से बिन्दुओं का चयन कर उन्हें क्रमानुसार लिखकर उनसे उसके अनुरूप निबंध लिखने के लिए कह सकता है। निबंध की रूपरेखा अथवा उसके ऊपर-नीचे का कुछ भाग लिखकर निबंध को पूरा करने के लिए कहा जा सकता है।

iii.कहानी लेखन : अन्य भाषा-शिक्षण में सर्जनात्मक लेखन का अपने महत्त्व है। उदाहरणार्थ - विद्यार्थियों को रूपरेखा आदि देकर छोटी-छोटी कहानियाँ लिखने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

iv.सर्जनात्मक लेखन : कहानी के ही समान विद्यार्थी को कविता लेखन, स्केच तथा जीवनी लेखन के लिए भी प्रोत्साहित किया जा सकता है। विद्यार्थी को प्राकृतिक वातावरन आदि के चित्र दिखाकर उनकी कल्पना को जागृत किया जाता है। पहले उससे उनके संबंध में बातें पूछी जा सकती है और फिर उस विषय पर कविता लिखने के लिए कहा जा सकता है। सभी विद्यार्थी अच्छी कविता नहीं लिख सकते, परंतु एक तो इससे उनकी कल्पना-क्षमता की जानकारी मिलती है, दूसरे ऐसे विद्यार्थियों का पता लगता है, जिनमें काव्य-सर्जन की क्षमता है। इसी प्रकार साहित्यकारों का परिचय देकर उनसे संबन्धित पुस्तकें और उनका साहित्य पढ़कर विद्यार्थियों से उनकी जीवनी लिखने के लिए कहा जा सकता है।

2.7शिक्षा की राष्ट्रीय नीति

बच्चे को भले ही भाषा की जानकारी एक अलग विषयक्षेत्र (व्याकरण या भाषाविज्ञान) के रूप में न दें, वह हर विषय और ज्ञानवार्ता के साथ इसको अज्ञात भाव से सीखता चलता है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि सामान्य शिक्षा में भाषा का अपना 'विषय' नहीं होता, पर वह हर 'विषय' के माध्यम रूप में स्थित मिलती है। चाहे हम इतिहास-भूगोल 'विषय' को पढ़ाएँ अथवा भौतिक-रसायनशास्त्र विषय को, भाषा से असम्बद्ध रहकर हम न तो इसकी शिक्षा दे सकते हैं और न शिक्षार्थी इसे अपने भीतर आत्मसात ही कर सकता है। कारण स्पष्ट है - भाषा अगर सामाजिक वस्तु के रूप में सम्प्रेषण व्यवस्था का माध्यम है तो वह सामाजिक वस्तु के रूप में सम्प्रेषण व्यवस्था का माध्यम है तो वह मानसिक जीवन की संकल्पनात्मक शक्ति भी है। अगर शिक्षक, विषयवस्तु को सही भाषप्रयोग में बाँधकर शिक्षार्थी तक पहुँचा नहीं सकता, तो वह अपने कार्य में लक्ष्यच्युत ही माना जाएगा और इसी प्रकार अगर शिक्षार्थी, संप्रेष्य कथ्य को सही भाषा के सहारे अपनी संकल्पनात्मक भूमि पर उतार कर उसे आत्मसात नहीं कर लेय, तो उसे शिक्षा का योग्य ग्राहक नहीं कहा जा सकता। इस पूरी प्रक्रिया के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि भाषा, संप्रेष्य कथ्य के रूप में भले ही 'विषयवस्तु' के रूप में सिद्ध न मानी जाए पर पूरी सम्प्रेषण प्रक्रिया अथवा शिक्षाव्यापार का वह आधारभूत अंग है। अहि कारण है कि आज शिक्षाविद और दार्शनिक यह स्वीकार करने लगे हैं कि हर शैक्षिक उद्देश्य की असफल परिणति अथवा गलत उपलब्धि के पीछे मूलतः भाषा की असफल सिद्धि अथवा गलत प्रयोग होता है।

शिक्षक, शिक्षणविधि, शिक्षणसामग्री, शैक्षणिक निर्देश आदि सभी तत्व, शिक्षा के उपकरण हैं। वे निर्धारित शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति के मात्र साधन हैं। इन सबके मूल में उनका भोक्ता, शिक्षार्थी रहता है। लक्ष्य के संदर्भ में पुराने और नए मूल्यों एवं अंतर्दृष्टि के

संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि शिक्षा की पुरानी दृष्टि विषयवस्तु को विषयतथ्य और विषयकौशल के रूप में बालक (शिक्षार्थी) तक पहुँचना चाहती थी जिससे वह अपनी वयस्क (भविष्य) अवस्था में उनका उपयोग कर सके। शिक्षा की नई दृष्टि, बालक के अनुभव को वर्तमान रूप में वास्तविक मानकर, उसके व्यक्तित्व के उस बहुमुखी विकास को अपना लक्ष्य स्वीकार करती है, जो मात्र परंपरित सांस्कृतिक मूल्यों का संवाहक नहीं होता, अपितु जो वर्तमान वैयक्तिक और सामाजिक आवश्यकताओं के प्रति समझदारी उत्पन्न करता है और उसे अपने अनुरूप मोड़ने या नियंत्रित करने की क्षमता भी पैदा करता है। अतः आज की मान्य शिक्षणदृष्टि का केंद्रक विद्यार्थी (का अनुभवजगत) होता है और लक्ष्य उसका 'सामाजीकरण' (सोशलाइजेशन)। सामाजीकरण का उसका यह लक्ष्य ही शिक्षा को समाज के बृहत्तर संदर्भ से जोड़ता है।

यह तथ्य भी उपेक्षणीय नहीं है कि पाठ्यचर्या का संबंध, राष्ट्र की शैक्षिक नीति और व्यवस्था से सीधे जुड़ा है। इसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि पाठ्यचर्या के भीतर भाषा-शिक्षण व्यवस्था का संबंध राष्ट्र की भाषा नीति और व्यवस्था से रहता है। शैक्षिक या भाषा नीति के निर्धारक, प्रशासनिक और सामाजिक संस्थान (institution) होते हैं पर प्रशासंतन्त्र, अर्थव्यवस्था एवं निर्देशन शक्ति को प्रभावी रूप में नियंत्रित करने वाला सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संस्थान स्वयं सरकार होती है। यह ठीक है कि सरकार और प्रशासन की नीति, राष्ट्र की अपनी सामाजिक-शैक्षिक स्थितियों से अप्रभावित नहीं रह सकती, पर नीति एवं व्यवस्था संबंधी निर्णय लेने वाला संस्थान सरकार और उसका प्रशासन तंत्र ही होता है।

भाषा नीति का सीधा संबंध किस प्रकार पाठ्यचर्या पर पड़ता है, इसका ज्वलंत उदाहरण है भारत सरकार द्वारा स्वीकृत त्रिभाषासूत्र। शिक्षा आयोग (1964-66) द्वारा संशोधित

त्रिभाषासूत्र में भाषाओं को निम्नलिखित क्रम से स्कूली पाठ्यचर्या में रखने की नीति का समर्थन मिलता है :

1.मातृभाषा अथवा प्रादेशिक भाषा

2.संघ की राजभाषा (हिन्दी) अथवा (जब तक स्थिति बनी हुई है) संघ की सहयोगी राजभाषा (अंग्रेज़ी)

3.आधुनिक भारतीय अथवा विदेशी भाषा जो (1) और (2) के अंतर्गत न आती हो और शिक्षा की माध्यम भाषा के रूप में प्रयुक्त न होती है।

स्पष्ट है कि हमारी राष्ट्रीय भाषा नीति, इस तथ्य का निर्देश देती है कि स्कूली शिक्षा में कौन-सी भाषा कब शुरू की जाए, कितने समय तक उसे पढ़ाया जाए, किस भाषा को शैक्षिक भाषा माना जाए और किसे विषय रूप में पढ़ाया जाए आदि। इस नीति के अनुसार पहली (अर्थात् मातृभाषा) को अनिवार्यतः दस वर्ष पढ़ाना आवश्यक है। द्वितीय भाषा या तो राजभाषा हिन्दी हो सकती है या अंग्रेज़ी, जिसे अनिवार्यतः पाँचवीं कक्षा से दसवीं कक्षा तक छः वर्षों के लिए पढ़ाना अपेक्षित है। इस स्तर पर हिन्दी या अंग्रेज़ी में से उस भाषा की भी पढ़ाई वैकल्पिक रूप में प्रारम्भ की जा सकती है जिसे द्वितीय भाषा के अनिवार्य रूप में शिक्षार्थी ने स्वीकार नहीं किया है। आठवीं से दसवीं कक्षा में तीसरी भाषा की पढ़ाई तीन वर्ष के लिए अपेक्षित है। इन तीन वर्षों के समय एक या उससे अधिक आधुनिक भारतीय भाषाओं को विकल्प रूप में पढ़ने-पढ़ाने की भी छूट है। उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं अर्थात् ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षा में अनिवार्य किन्हीं भी दो भाषाओं (जिन्हें उसने पहले पढ़ा हो) को पढ्ना आवश्यक है अथवा एक या अधिक आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकल्प के साथ नीचे दी गई भाषाओं में किन्हीं दो का अध्ययन आवश्यक है :

1.आधुनिक भारतीय भाषाएँ

2.क्लासिक भाषाएँ (भारतीय अथवा विदेशी)

3.आधुनिक विदेशी भाषाएँ

यह ठीक है कि प्रत्येक राज्य ने संघ की इस भाषा नीति को समरूपी भाव से नहीं अपनाया है पर इसमें भी संदेह नहीं किया जा सकता कि इस भाषा नीति ने प्रत्येक राज्य की शिक्षा व्यवस्था और स्कूल की पाठ्यचर्या को किसी-न-किसी रूप में प्रभावित किया है। यह बात दूसरी है कि इस भाषा नीति को किसने कितनी गंभीरता से स्वीकार किया है और यह भाषा नीति राष्ट्र के बृहत्तर सामाजिक एवं शैक्षिक प्रयोजनों को साधने में कितनी सहायक हुई है।

भाषा-शिक्षण वस्तुतः विद्यार्थी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को विकसित करने के माध्यम है। यहाँ यह जिज्ञासा हो सकती है कि विद्यार्थी जिस एक अथवा एकाधिक प्रयोजनों से भाषा-शिक्षण की ओर अग्रसर होता है उनकी सिद्धि भी कर पता है या नहीं। वस्तुतः 'सिद्धि' पक्ष विद्यार्थी से सम्बद्ध है, शिक्षक से नहीं। शिक्षक उस सिद्धि में प्रेरक का कार्य अवश्य कर सकता है। विद्यार्थी की दृष्टि से सोचे तो वर्ण, शब्द, रूप-रचना, वाक्य-रचना आदि के स्तर पर विद्यार्थी ने अपेक्षित ज्ञान प्राप्त किया अथवा नहीं, इसकी जानकारी तो परीक्षण-मूल्यांकन के माध्यम से हो जाती है और विद्यार्थी में इन कौशलों को बढ़ाने के प्रयास भी किए जा सकते हैं। भाषा-शिक्षण के बृहत्तर उद्देश्यों के संबंध में इतना तो निश्चित है कि उन सभी उद्देश्यों की सिद्धि एक सीमा तक तो अवश्य होती है परंतु यह सिद्धि तभी सम्यक बनती है जब विद्यार्थी का चारों भाषाई कौशलों पर पूर्ण अधिकार हो जाए। वस्तुतः यह एक सतत चलनेवाली प्रक्रिया है। भाषा-शिक्षण के समय जिन निश्चित प्रयोजनों के साथ विद्यार्थी आगे बढ़ता है, शिक्षण के माध्यम से उनकी सिद्धि का प्रयास उम्रभर करता रहता है। यही भाषा-शिक्षण के प्रयोजनों की सीमा भी है और शक्ति भी।

पाद टिप्पणी :

1.अग्रवाल, डॉ॰ मुकेश (2003), *हिन्दी भाषा शिक्षण*, के॰ एल॰ पचौरी प्रकाशन, गाजियाबाद, प्रथम संस्काण, पृ॰ 1

2. अग्रवाल, डॉ॰ मुकेश (2003), *हिन्दी भाषा शिक्षण*, के॰ एल॰ पचौरी प्रकाशन, गाजियाबाद, प्रथम संस्काण, पृ॰ 60-63

3. अग्रवाल, डॉ॰ मुकेश (2003), *हिन्दी भाषा शिक्षण*, के॰ एल॰ पचौरी प्रकाशन, गाजियाबाद, प्रथम संस्काण, पृ॰ 86

4. अग्रवाल, डॉ॰ मुकेश (2003), *हिन्दी भाषा शिक्षण*, के॰ एल॰ पचौरी प्रकाशन, गाजियाबाद, प्रथम संस्काण, पृ॰ 86

5. अग्रवाल, डॉ॰ मुकेश (2003), *हिन्दी भाषा शिक्षण*, के॰ एल॰ पचौरी प्रकाशन, गाजियाबाद, प्रथम संस्काण, पृ॰ 88

6 . अग्रवाल, डॉ॰ मुकेश (2003), *हिन्दी भाषा शिक्षण*, के॰ एल॰ पचौरी प्रकाशन, गाजियाबाद, प्रथम संस्काण, पृ॰ 182

7. अग्रवाल, डॉ॰ मुकेश (2003), *हिन्दी भाषा शिक्षण*, के॰ एल॰ पचौरी प्रकाशन, गाजियाबाद, प्रथम संस्काण, पृ॰ 182-186

8. अग्रवाल, डॉ॰ मुकेश (2003), *हिन्दी भाषा शिक्षण*, के॰ एल॰ पचौरी प्रकाशन, गाजियाबाद, प्रथम संस्काण, पृ॰ 187-188

9. अग्रवाल, डॉ॰ मुकेश (2003), *हिन्दी भाषा शिक्षण*, के॰ एल॰ पचौरी प्रकाशन, गाजियाबाद, प्रथम संस्काण, पृ॰ 189

10. अग्रवाल, डॉ॰ मुकेश (2003), *हिन्दी भाषा शिक्षण*, के॰ एल॰ पचौरी प्रकाशन, गाजियाबाद, प्रथम संस्काण, पृ॰ 168-169

11. अग्रवाल, डॉ॰ मुकेश (2003), *हिन्दी भाषा शिक्षण*, के॰ एल॰ पचौरी प्रकाशन, गाजियाबाद, प्रथम संस्काण, पृ॰ 170-171

12.गुप्ता, महेश चन्द्र, शर्मा, प्रीतम प्रसाद (2009), *हिन्दी शिक्षण*, साहित्यागार प्रकाशन, जयपुर, पृ॰ 79

13. गुप्ता, महेश चन्द्र, शर्मा, प्रीतम प्रसाद (2009), *हिन्दी शिक्षण*, साहित्यागार प्रकाशन, जयपुर, पृ॰ 87

14. गुप्ता, महेश चन्द्र, शर्मा, प्रीतम प्रसाद (2009), *हिन्दी शिक्षण*, साहित्यागार प्रकाशन, जयपुर, पृ॰ 87

15. गुप्ता, महेश चन्द्र, शर्मा, प्रीतम प्रसाद (2009), *हिन्दी शिक्षण*, साहित्यागार प्रकाशन, जयपुर, पृ॰ 95

16. गुप्ता, महेश चन्द्र, शर्मा, प्रीतम प्रसाद (2009), *हिन्दी शिक्षण*, साहित्यागार प्रकाशन, जयपुर, पृ॰ 114

17. गुप्ता, महेश चन्द्र, शर्मा, प्रीतम प्रसाद (2009), *हिन्दी शिक्षण*, साहित्यागार प्रकाशन, जयपुर, पृ॰ 114